इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
प्रबंधशास्त्र अध्ययन विद्यापीठ

MHI-03

इतिहास-लेखन

पूर्व–आधुनिक परंपराएँ–2

3

"शिक्षा मानव को बन्धनों से मुक्त करती है और आज के युग में तो यह लोकतंत्र की भावना का आधार भी है। जन्म तथा अन्य कारणों से उत्पन्न जाति एवं वर्गगत विषमताओं को दूर करते हुए मनुष्य को इन सबसे ऊपर उठाती है।"

– इन्दिरा गांधी

"Education is a liberating force, and in our age it is also a democratising force, cutting across the barriers of caste and class, smoothing out inequalities imposed by birth and other circumstances."

– Indira Gandhi

इन्दिरा गाँधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ

MHI-03

इतिहास-लेखन

खंड

3

पूर्व-आधुनिक परंपराएँ – 2

विशेषज्ञ समिति

कार्यक्रम संयोजक : प्रो. ए. आर. खान

पाठ्यक्रम सम्पादक : प्रो. सब्यसाची भट्टाचार्य

पाठ्यक्रम संयोजक : डॉ. शशिभूषण उपाध्याय

खंड निर्माण दल

इकाई संख्या	इकाई लेखक	इग्नू संकाय
इकाई 8	प्रो. रजत दत्त सेंटर फॉर हिस्टॉरिकल स्टडीज़ जे.एन.यू., नई दिल्ली	डॉ. शशिभूषण उपाध्याय (संरचना और विषय संपादन)
इकाई 9	प्रो. आई. एच. सिद्दिकी इतिहास विभाग अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़	
इकाई 10	प्रो. आई. एच. सिद्दिकी इतिहास विभाग अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़	**अनुवाद :** श्री राजेन्द्र पांडे
इकाई 11	डॉ. शशिभूषण उपाध्याय इतिहास संकाय इग्नू, नई दिल्ली	

सामग्री निर्माण	आवरण	पांडुलिपि निर्माण
श्री बी. नटराजन उपकुलसचिव (प्रकाशन) श्री जितेन्द्र सेठी सहा. कुलसचिव (प्रकाशन) श्री अजीत कुमार अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)	ग्राफिक प्वाइंट, नई दिल्ली	श्री प्रतुल वशिष्ठ

अप्रैल, 2009 (पुनर्मुद्रित)

ISBN - 81 - 266 - 2434 - 5

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय मैदान गढ़ी नई दिल्ली-110068 से प्राप्त की जा सकती है।

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग: राजश्री कम्प्यूटर्स, V-166A, भगवती विहार, उत्तम नगर नई दिल्ली-110059

मुद्रकः गीता ऑफसेट प्रिंटर्स, सी-90, ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110020

खंड 3 पूर्व-आधुनिक परंपराएँ–2

नीचे के निबंधों में इतिहास-लेखन की प्रमुख परंपराओं में शास्त्रीय पुरातनता के आगे और आधुनिक युग के पहले काल का सर्वेक्षण करने का प्रयास किया जाएगा, जिसे यूरोपीय इतिहास में मध्य-काल के नाम से व्याख्यायित किया जाता है। इस तरह का तीन सतही विभाग – प्राचीन, मध्य और आधुनिक काल – यूरोपीय इतिहास में मायने रखता है। शास्त्रीय ग्रीक और रोमन सभ्यता और पुनर्जागरण और सुधार के साथ आधुनिक युग की शुरूआत के बीच मध्य युग सामान्य रूप से आधुनिक यूरोपीय मान्यता में विशिष्ट काल के रूप में पहचाने गए हैं। फिर भी, वही तीन सतही विभेद विश्व के यूरोपेतर भागों में कम मायने रखती है। यह एक महज़ संयोग है जो आधुनिक विश्व के यूरोपीय सांस्कृतिक प्रभुत्व की वजह से प्रतिष्ठित हुआ है। इसीलिए हम एशियाई मध्यकाल की बात करते हैं। तथाकथित मध्यकाल में इतिहास-लेखन की यूरोप, अरब और भारत में क्या प्रवृत्ति थी?

प्रथम स्थान में, एक सामान्य धारणा जुड़ी रही है कि ऐतिहासिक आख्यान धार्मिक परंपरा के द्वारा प्रभावित या प्रेरित होते रहे हैं। यह तथ्य सच साबित हुआ है यूरोप के इतिहास-लेखन में (8वीं से 14वीं शताब्दी के बीच) और साथ ही साथ अरब इतिहास-लेखन (8वीं से 15वीं शताब्दी के बीच) में भी। यूरोप में ईसाई चर्च बौद्धिक कार्यकलापों का मुख्य संरक्षक और भागीदार था, ऐतिहासिक सूचना ईसाई आध्यात्म विज्ञान और दर्शन से पूरी तरह प्रभावित थी, और यहाँ तक कि ऐतिहासिक आख्यानों का कालक्रम निरूपण बाइबल से निष्पादित धार्मिक सिद्धांतों पर आधारित थे। ईसाई दार्शनिक इतिहासकार के एक प्रमुख उदाहरण थे आगस्तीन (354-430ई.) जिनका कार्य *द सीटी ऑफ गॉड* ने इतिहास में घटित घटनाओं को ईश्वर की इच्छा की अभिव्यक्ति के रूप में प्रदर्शित किया, जो ईसा के द्वारा अभिव्यक्त किया गया और ईसाइयों को ईश्वर के विश्वस्त 'खगोलीय शहर' की ओर अभिमुख किया। अरब इतिहास-लेखन में ऐतिहासिक अर्थ कुरान और हदीस के द्वारा निरूपित किया गया। पवित्र पैगम्बर का जीवन काल प्रारंभिक इतिहास का मुख्य विषय था, और इन आख्यानों का मुख्य विषय इस्लामी देश दुनिया के लोग थे।

जबकि युग की धार्मिक संस्कृति ने अपना चिह्न पूर्व आधुनिक विद्वानों के ऐतिहासिक चिंतन पर छोड़ा, यहाँ पर कुछ बौद्धिक प्रथा और पद्धति भी एक साथ विकसित हुई। इस तरह अरब दुनिया में तार्किक पद्धति की शुरूआत पैगम्बर के कथन और क्रियाओं को ठीक ढंग से प्रस्तुत करने में हुई। मध्यकालीन युरोप में पाठों की तुलना करने की पद्धति विकसित हुई, बाइबल कालों की गणना और उनका संकलन कई तरीकों से हुआ, विवादित अर्थों को स्वीकार या अस्वीकार करने के तरीकों को ढूँढा गया तथा इसी तरह के अन्य कार्य किए गए। जबकि रूढ़ियाँ अविवादित थी; उनके मूल का वर्णन बार-बार के परीक्षण का विषय था, विशेष रूप से सक्रिय ढंग से जब प्रतिद्वंद्वी विचारधारा के बौद्धिक विवाद कर रहे हों।

मध्यकालीन इतिहास-लेखन की परंपरा का अध्ययन करते हुए व्यक्ति को उन कारकों पर ध्यान देना चाहिए जिससे आधुनिक इतिहास-लेखन का उदय हुआ। मध्यकालीन यूरोप में इतिहास के संवाद को विकसित करने की क्षमता थी जो चर्च परंपरा से स्वतंत्र थी और ये क्षमताएँ मध्ययुग के अंत तक परिपक्व होने के लिए विकसित हुईं। चर्च के इतिहास-लेखन से पूर्व भी आख्यानों की एक परंपरा थी; एक भाषागत परंपरा भी थी, मूल और प्रेरणा में कुछ पूर्व ईसाई। फिर भी उदाहरण के तौर पर आख्यान थे : इंग्लैंड के ऐंग्लो सैक्सन के सामूहिक नाम के और फ्रांस में लोम्बार्ड जातीय नाम से। यह मौखिक परंपरा चर्च द्वारा प्रायोजित लैटिन भाषा के इतिहास के साथ-साथ मौजूद थी। दूसरी, अपेक्षाकृत सेक्यूलर परंपरा सार्लेमां, फ्रैंक्स के राजा या जर्मनी के बादशाह फ्रेडरिक-I जैसे महान् सामंतों द्वारा संरक्षित ऐतिहासिक आख्यानों के रूप में थी। तीसरी, इतिहास-लेखन का एक आंतरिक विकास था जो सत्य को स्थापित करने के लिए दस्तावेज के तार्किक पठन की पद्धति की दिशा में था; मध्यकाल के पुराने विद्वानों का पुरालिपि विद्या के अध्ययन का प्रयास, पाण्डुलिपि का अध्ययन, दस्तावेज़ की तिथि, लेखन और प्रामाणिकता स्थापित करने के लिए भाषा, शैली, और लेखन आदि का अध्ययन का अध्ययन मेबिलोन के दे रे *डिप्लोमेटिका* (1681) पुस्तक में अच्छी तरह से संयोजित है।

सामान्य रूप से मध्ययुग के इतिहास-लेखन का अन्त क्यों हुआ? कुछ अंशों में यह नया पुनर्जागरण उत्साह था जिसने ईसा-पूर्व की शास्त्रीय पद्धति की बौद्धिकता और संस्कृति को आगे की ओर ले आई। इसने चर्च को सीधे तौर पर चुनौती नहीं दी, किंतु प्रोटेस्टेंट सुधार ने ज़रूर स्थायी चर्च को चुनौती दी। इसमें सुधार आंदोलन का विवाद भी शामिल था। यह कैथोलिक चर्च द्वारा प्रायोजित और प्रतिष्ठित इतिहास के एक रूप का पुन:परीक्षण भी था। कई सुधारवादी प्रवक्ता चर्च लेखन में अतीत के प्रतिनिधित्व पर सवाल उठाने लगे, विशेष रूप से कैथोलिक चर्च और पोपवाद का मूल ईसाइयत का सच्चा उत्तराधिकारी होने के दावे की दृष्टि से। फिर भी, यद्यपि सुधार एक धार्मिक आंदोलन था, जो संवाद इसने प्रतिपादित किया उसने धार्मिक संस्थाओं और विचारधारा के ऐतिहासिक दावों पर सवालिया निशान लगाए। यह प्रक्रिया सत्रहवीं शताब्दी के विज्ञान आंदोलन द्वारा आगे बढ़ाई गई। परंपरागत और आधुनिक पद्धति के बीच के संघर्ष में आधुनिकता की विजय हुई और कई क्षेत्रों से चर्च के धार्मिक साम्राज्य का अंत हुआ, उनके इतिहास-लेखन समेत। इस पाठ्यक्रम के दूसरे भागों में इसके विकास, ऐतिहासिक चिंतन के मध्ययुग से आधुनिक चिंतन की ओर बदलाव, का विस्तार से वर्णन किया जाएगा। यह एक महत्त्वपूर्ण विकास है क्योंकि इसने न सिर्फ़ यूरोप के ऐतिहासिक पद्धति को बदला, बल्कि सुदूर विश्व के अन्य भागों पर भी प्रभाव डाला।

अरब इतिहास-लेखन का तरीका यूरोप से भिन्न था, किंतु कुछ ऐसे लोग भी थे जो अपने समय के बढ़ते हुए ऐतिहासिक धारणाओं से काफी आगे थे। एक ऐसे इतिहासकार जिनकी ओर हमारा ध्यान जाता है, वह है *इब्न खल्दुन* (उनकी मृत्यु तिथि ज्ञात है, 1406 ई०)। जैसा कि आगे के अध्यायों में अरब इतिहासकारों ने सूचना दी है, वे कई मायनों में अपनी सोच में धार्मिक प्रवृत्ति से कोई रिश्ता नहीं रखते थे और तार्किक व्याख्या प्रस्तुत करते समय वह पूरी तरह मुस्लिम आध्यात्मिक विचारों के विरुद्ध थे। उनके कुछ ही पूर्ववर्ती और उससे भी कम अनुवर्ती थे। किंतु वह धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त ऐतिहासिक विकास के महत्त्वपूर्ण सहायक के रूप में माने जाते हैं। आगे, उनकी कारकों पर वृहद् सोच इतिहास-लेखन को आगे ले जाती है और आधुनिक समाज-विज्ञान के आगे पूर्व मानव-समाजों के बारे में भी धारणा प्रस्तुत करती है।

इस समूह के तीसरे निबंध में आप इंडो-परशियन इतिहास-लेखन के सल्तनत काल और भारत में मुगल काल के बारे में पढ़ेंगे। इतिहास-लेखन के इस पद्धति के प्रारंभकर्ता पश्चिम एशिया के प्रवासी थे किंतु उनका काम भारत में जन्मे इतिहासकारों ने ले लिया जो दिल्ली में शाही दरबार से जुड़े रहे। इस इतिहास-लेखन का मुख्य आकर्षण शाही वंश और राजनीतिक विशिष्ट लोग थे और ये इतिहासकार अपने शासकों और संरक्षकों के महान् कार्यों के बारे में ही लिखा करते थे। फिर भी, उसी समय, उन्होंने भारतीय इतिहास पर भी प्रकाश की एक किरण छोड़ी और भारतीय इतिहास में मुख्य नायकों के बारे में स्पष्ट जानकारी दी। जब ब्रिटिश लोग 19वीं शताब्दी में पूर्व उपनिवेशीय भारतीय इतिहास की व्याख्या प्रारंभ किए वे मुख्य रूप से मध्यकालीन इतिहासकारों पर ही निर्भर रहे। कुछ इतिहासकार बहुत वृहद् रूप में सूचना इकट्ठा करना प्रारंभ कर दिए, जैसा कि प्रबुद्ध इतिहास लेखक अबुल फजल ने अपनी पुस्तक *आइने अकबरी* में किया। लेकिन बहुमत में इतिहासकार राजदरबार के सरकारी इतिहासकार थे। हमें यह निश्चित रूप से साथ-साथ याद रखना चाहिए कि ये सरकारी इतिहास फारसी भाषा में लिखे गए थे, लेकिन देशी भाषा में भी इतिहास लिखे गए थे जो मौखिक रूप से संप्रेषित किए गए थे, और स्थानीय इतिहास के काफी करीब भी थे। इनमें से कुछ प्रकाशित और अनुवाद रूप में भी उपलब्ध और प्रसिद्ध थे। इस दिशा में जेम्स टोड का *राजस्थानी इतिवृत्त* काफी प्रसिद्ध है।

इस संग्रह की अंतिम इकाई ऐसे स्थानीय परंपराओं और मौखिक इतिहास पर है। यह कहा गया है कि मराठा देश में बखाड़, राजस्थान में *रासो*, और भारतीय इतिहास की *वंशावलियाँ* इस तरह के महत्त्वपूर्ण कथात्मक लेखन हैं। ये कथाएँ स्थान की दृष्टि से बहुत सीमित और आंशिक हैं किंतु वे राजदरबारों के फारसी इतिहास से अलग सूचनाएँ रखती हैं। वे हमें स्थानीय राजनीतिक अभिजात्यों और शासक वर्ग के बारे में न सिर्फ बताती हैं, बल्कि सामान्य लोगों के बारे में, और दैनिक जीवन के बारे में भी हमें बताती हैं। बहुत समय तक प्रमुख इतिहासकारों द्वारा नज़रअंदाज़ किए जाने के बाद, मौखिक स्रोत अब लोगों के इतिहास-लेखन में वृहद् रूप से प्रयोग होने लगे हैं और ये इतिहास राजाओं और देशों के इतिहास से अलग हैं।

इकाई 8 मध्यकालीन इतिहास-लेखन – पश्चिमी

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

यूरोपीय मध्ययुग में *हिस्टोरिया* और *क्रोनिका* ये दो शब्द इतिहास के क्रम निर्धारण और [illegible] के लिए प्रयुक्त किए जाते थे। इसीडोर ऑफ सेविले (560-636 ई०) की प्रसिद्ध समकालीन परिभाषा के अनुसार *हिस्टोरिया* सत्य का कथन (नरेशिओ रिरम जेस्टारम) था। यदि *हिस्टोरिया* शब्द औपचारिक रूप से घटनाओं के वर्णन के लिए प्रयुक्त हुआ, एक गहरा अर्थ इसके साथ जोड़ा गया *क्रॉनिका* के रूप में जो अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग किया गया जिसने इतिहास को 'हिस्टोरियोग्राफी' या विगत के व्याख्यात्मक 'क्रानिकल' का अर्थ दिया। इसने इतिहास को शब्द-संसर्ग के साथ-साथ वस्तुगत अर्थ भी दिया। इतिहास-लेखन ने कथाओं के माध्यम से जो *क्रॉनिका* में भी शामिल थी, वर्तमान से अतीत के संबंध को बौद्धिक प्रतिनिधित्व के साथ जोड़ा। इस तरह, ईसाई इतिहास लेखक प्रारंभ से ही गहरे रूप से तथ्यों के सही विभाजन, सतत क्रमबद्धता, दिन, काल आदि से सम्बद्ध रहे।

8.2 ईसाई इतिहास-लेखन

प्राचीन ईसाई इतिहास सार्वभौमिक इतिहास थे जो इस सामान्य उद्देश्य से इसलिए लिखे गए थे कि वे बाइबिल इतिहास (जो कालक्रम गणना में सही नहीं थे) को प्राचीन कालक्रम से जोड़ सकें जिसमें वृहद् ईसा-पूर्व का इतिहास शामिल हो और कई कालों में फैला हो। समकालीन यूरोप का राजनीतिक विकास, जो मुख्य रूप से वहद् सामंती जमींदारी का और राजशाही के निर्माण से संबद्ध था, ने भी इतिहास-लेखन पर अपनी छाप छोड़ी। इतिहास-लेखन पर यद्यपि यह जिम्मेदारी भी आई कि वह इन ईसाई और धर्मनिरपेक्ष परंपराओं के बीच सामंजस्य स्थापित करे। इस प्रकार, मिस्टर एकहार्ट (1260-1327 ई०) ने ईसा को मोक्षवादी इतिहास का केंद्र-बिंदु निर्धारित करते हुए राजनीतिक सत्ता के नव-निर्माण को भी संदर्भ बिंदु बनाया। ऑटो ऑफ फ्रेजिंग (1111-1158 ई०) ने 1146 में अपने विश्व-इतिहास को *द टु सीटीज़* नाम से लिखा। यद्यपि उन्होंने इतिहास की धार्मिक संकल्पना को स्वीकार किया, उन्होंने प्रत्येक पुस्तक को राजनीतिक बदलाव की कथा के साथ समाप्त किया, और इस तरह उन्होंने विश्व की अस्थिरता को संकेतित किया। यह अस्थिर कालक्रम सीमांकन उच्च मध्ययुग के इतिहास में भी द्रष्टव्य है। यहाँ पर दो कालक्रम पद्धतियों ने प्रभुत्व जमाया। निर्वाण युग और राज्यों का पंजीकरण तथा शासकों और कई इतिहासकारों ने इन तत्त्वों में कथात्मक और तथ्यात्मक एकता स्थापित करने का प्रयास किया। इससे प्राकृतिक परिवर्तन और इतिहास की अल्पकालिक प्रकृति में विश्वास बढ़ा क्योंकि सभी भौमिक (धरती की) वस्तुएँ समय के द्वारा निर्देशित होती हैं। मध्यकालीन इतिहासकारों के लिए ऐतिहासिक परिवर्तन मुख्य रूप से राज्यों तथा शासकों के चक्रीय विकास और पतन से संबंधित रही हैं।

अतीत की मध्ययुगीन संकल्पना इस प्रकार पूरी तरह से व्यक्तिगत, संदिग्ध, यहाँ तक कि विरोधाभासी थी जो एक तरफ ऐतिहासिक विकास में मिश्रित विश्वास, और दूसरी तरफ, उसकी अपरिवर्तनीयता, युगीन बदलाव और एक ही समय उसकी निरंतरता और ऐतिहासिक परिस्थितियों से संबंधित थी। अंतिम विश्लेषण में, यह अतीत के सही ऐतिहासिक चित्रण में विफल रही। तथापि, कालक्रम निर्धारण के जाँच पर बल देने के कारण, यह समझ पूरी तरह से काल-विहीन नहीं कही जा सकतीं, किंतु कई तरह से यह प्रत्येक बीती हुई घटना पर विशिष्ट व्यक्तिगत अर्थ देने में विफल रही। स्थायी अतीत को विकास के रूप में समझा गया। इसने अपने समय के अनुसार ऐतिहासिक घटनाओं के क्रम का वृहद् प्रयोजन उत्पन्न किया जो किसी भी तरह से विरोधी प्रवृत्ति के विरुद्ध नहीं था और उनके कालक्रम और घटनाओं को विषय के साथ जोड़ सकता था। अतीत की मध्ययुगीन संकल्पना के लिए समय भौमिक अस्तित्व का एक प्रमुख भाग था, और साथ ही शाश्वत् विश्व का प्रतीक भी था। इतिहास-लेखन से जुड़ा विचार इतिहास के धार्मिक आवश्यकता से भी जुड़ा था। फिर भी, परिवर्तन का तथ्य भी अस्वीकार करने योग्य नहीं था। यहाँ तक कि बाइबिल में विश्व के तीन साम्राज्यों के उत्थान और पतन को वर्णित किया गया है, और, सेंट ऑगस्टीन (354-430 ई०) के समय से कोई भी उन बदलावों को अस्वीकार नहीं कर सकता जो ईसाइयत के आगमन के कारण हुए या उसके प्रभाव से होने वाले थे। सेंट ऑगस्टीन ने ऐतिहासिक परिवर्तन की पूर्ण स्वीकृत व्याख्या भी दी थी। उन्होंने तर्क दिया कि सिर्फ़ ईश्वर ही पूर्ण और नश्वर है, जबकि सांसारिक विश्व में परिवर्तन मानवीय अस्तित्व की अपूर्णता का परिणाम था।

बाइबिल को मध्ययुग में सिर्फ़ ईसाई धर्म के प्रसार के शाब्दिक वर्णन के रूप में ही नहीं देखा गया, बल्कि इतिहास के आध्यात्मिक भाग के रूप में भी देखा गया। बाइबिल में ईसाई परंपरा के बिखरे हुए पाठों का स्वीकरण है जिसने इसे इतिहास-लेखन प्रारूप के संदर्भ में इतिहास के अनुरूप बनाया जो प्रतीकवाद के एकीकृत पद्धति के साथ मिला हुआ था, अतः इतिहास को परंपरा और प्रतिनिधित्व के साथ जोड़ा गया। कैथोलिकवाद की स्वीकृति ने ऐतिहासिक समानता को बल प्रदान किया, क्योंकि इसका एक मुख्य तत्त्व सार्वभौमिक धर्म का प्रतीक था जिसमें विशिष्ट नियमों के लिए बहुत कम स्थान था। शुरू के ईसाई ऐतिहासिक कार्य राजनीतिक घटनाओं के कालक्रम के अनुसार जुड़े और शब्दबद्ध थे, और मानवीयता का सार्वभौमिक इतिहास तैयार कर रहे थे। यद्यपि शासकवर्ग की ईश्वरीय उत्पत्ति रूढ़िवादी ईसाई धार्मिक उपदेशों के विरुद्ध थी, अतीत (इतिहास) कथाओं के द्वारा स्थापित था, जो पवित्र ग्रंथों में लिखा गया था, और विशिष्ट परंपराओं की कोई मान्यता नहीं थी जो राजनीतिक समूहों में भर दी गई थी। और ईसाई चर्च ने ईसाई लोगों पर यह नियम थोप दिया था कि वे पवित्र ग्रंथ का सम्मान करें जो परंपरा और न्याय का मुख्य स्रोत है। चर्च का इतिहास सार्वभौमिक इतिहास बन चुका था।

8.3 समय की परिवर्तित संकल्पना और इतिहास-लेखन

मध्य-युग के इतिहास-लेखन के कार्य में काल की सचेतन संकल्पना एक आवश्यक तत्त्व है। गहन बोध से जो अध्यात्म-विद्या और मध्ययुगीन इतिहास से उत्पन्न हुई, 'काल' पूरी तरह से सांसारिक बन गया क्योंकि यह सीधे रचना से संबंधित है और निर्माता के द्वारा निर्मिति का सार है। इसलिए, यह अनंतता के विरुद्ध स्थित है, जो ईश्वर की तरह कालविहीन और अचल है। यह समय की भौमिक अनंतता 12वीं शताब्दी के प्रारंभ में 'अनंतता की छाया' के रूप में वर्णित है। यह विश्व के साथ शुरू हुआ और विश्व के साथ खत्म हुआ। ऐसा साफ अलगाव ईश्वर के 'काल' और सांसारिक 'काल' के बीच महत्त्वपूर्ण था, कालक्रम की संकल्पना के विकास में, और इतिहास के कालपथ में गणतीय अनुक्रम के रूप में भी यह महत्त्वपूर्ण था। पद्धतीय संबंध और भी अधिक महत्त्वपूर्ण था – इसके बाद काल इतिहास-लेखन का एक प्रमुख अंग बन गया। अपने कालक्रम की भूमिका में, ह्यू ऑफ सेंट विक्टर (1109-1142 ई.) ने ऐतिहासिक तथ्य के तीन विशिष्ट परिस्थितियों का नाम दिया : 'तथ्यों का ज्ञान विशेष रूप से तीन पक्षों पर निर्भर करता है : किस व्यक्ति के द्वारा वे कार्य किए गए है;

स्थान (लोक) वे कहाँ किए गए हैं, और काल (टेंपोरा) कब वे किए गए हैं। इसके द्वारा क्रिया (नेगोटियम) की संकल्पना को जोड़ा जा सकता है। एक विशिष्ट मध्ययुगीन आख्यान इन चारों के द्वारा निर्धारित की गई थी। इसलिए, स्थान, काल और इतिहास मध्ययुगीन विश्वकोश के विषयवस्तु द्वारा ही नहीं बनाए गए थे, बल्कि कुछ काल गणना 'समय-सारिणी' से प्रारंभ हुआ था या काल के सैद्धांतिक विमर्श से प्रारंभ हुआ था। मध्ययुगीन बोध में कालक्रम तथ्य कथा के रूप में देखे गए थे और, परिणामस्वरूप, कालक्रम बन गए।

आधुनिक ज्ञान के अनुसार चार विशिष्ट ऐतिहासिक काल गणना थे जो ऐतिहासिक विषय को दूसरी शैलियों से अलग करते हैं:

1) इसके तथ्य के चयन द्वारा, अर्थात् किसी लेखक को वे सभी चीजें चयन करना होता था, जो याद हो सकें, और इसने इतिहास-लेखन को अलग बनाया;

2) सत्य (वास्तविक सत्य) के पुन:संग्रह करने का दावा जो कथा-साहित्य से पृथक था।

3) अतीत के इसके परीक्षण से और विशेष रूप से, मूल से, भविष्य के भविष्यवाणी से यह अलग था (जो फिर भी माना जाता था);

4) अतीत के ज्ञात तथ्य के संग्रह को भावी पीढ़ियों को प्रदान करने के उद्देश्य से यह इतिहास-लेखन के रूप में स्थापित किया गया था;

5) इसके निरूपण की विशिष्ट पद्धति से, कालक्रम से, इसने उपयुक्त चरित्र को ग्रहण किया।

यह महत्त्वपूर्ण है कि काल का यह अर्थ इतिहास-लेखन के यूरोपीय परंपरा में पहले विकसित हुआ। इस अभिनव काल-गणना के पीछे मुख्य कारण 'श्रद्धेय' बेडे (672-735 ई.) का योगदान था। एक बार फिर, इस परिवर्तन के मूल से बाइबिल को ऐतिहासिक बनाने की कोशिश थी। महत्त्वपूर्ण रूप से, बेडे जिन्होंने पहले 'क्रोनिका' शब्द प्रयोग किया था, 731 ई. के अपनी पुस्तक जो पूर्व बाइबिल परंपरा के लेखन में थी और जिसका शीर्षक था 'इक्लेसिएस्टिकल हिस्ट्री ऑफ द इंग्लिश पीपुल्स' में 'हिस्टोरिया' शब्द का प्रयोग किया। इतिहास के संश्लेषित रूप में वर्णित करने के संदर्भ में ऐसा करने से बेडे पूर्व ईसाई परंपरा को लैटिन से खींच रहे थे जहाँ *हिस्टोरिया* शब्द धर्मनिरपेक्ष इतिहास के अर्थ में विभिन्न स्रोतों से एकत्रित किया गया है और मानवीय विश्व की घटनाओं को दैवीय विश्व से अलग वर्णित किया है। फिर भी, बेडे ने 'हिस्टोरिया' के शब्द के अर्थ का विस्तार एक अच्छे विशेषण को जोड़कर किया जो मध्ययुगीन यूरोपीय इतिहास-लेखन में मील का पत्थर साबित हुआ, मुख्य रूप से *हिस्टोरिया* जो कि धर्म संबंधी था, फिर भी चर्च के इतिहास का लेखा सार्वभौमिकता में जोड़ना बाईबिल परंपरा का प्रस्तुतीकरण था। इस उद्देश्य से इतिहास-लेखन सबसे पहले उनके मस्तिष्क में होता है, सटीक होने की आवश्यकता के साथ, जिसके लिए वे अधिक सतर्क थे। इसके अतिरिक्त वे पहले इतिहासकार थे जिन्होंने ईस्वी शब्द प्रयुक्त किया, जिसमें ईसा के जन्म से कालक्रम प्रस्तुत किया गया और ऐसा करने से यूरोप के इतिहास-लेखन में काल-गणना का स्तर निर्धारित हुआ। *हिस्टोरिया इक्लेसिएस्टिका* की और अन्य दो पुस्तकों की लोकप्रियता के कारण यह पद्धति सामान्य प्रयोग में भी लाई गई। इससे वह तिथियों के परिवर्तन में सफल हुए जिसमें ब्रिटेन में रोमन सार्वभौमिक सत्ता से स्थानीय शासकों तक का कालक्रम निर्धारित हुआ जो रोमन प्रशासनिक संस्थाओं से गठबंधन पर नहीं बल्कि ईसा पर केंद्रित थीं। अधिक मौलिक स्तर पर, बेडे ने विभिन्न स्रोतों के सापेक्षिक प्रामाणिक मूल्य का मूल्यांकन किया। यहाँ से समूह केंद्रित समकालीन मौखिक परंपरा के ऐतिहासिक चिंतन से कुछ पद्धतीय बदलाव बेडे ने शुरू की। मौखिक रूप से प्रेषित परंपराओं ने अपनी उपयुक्तता और प्रामाणिकता बचाए रखी बिना किसी मौलिक परिवर्तन के जो एक वंश से दूसरे वंश को विशिष्ट समूहों में प्रदान की जाती थीं। इसके विरुद्ध, बेडे, प्राचीन परंपरा के इतिहासकारों की तरह, पूरी तरह से पाठ के लेखन और प्रकाशन से अपने आपको लगाए रखा जिससे उन्हें पठन और अनुकरण के द्वारा संप्रेषित होने की उम्मीद थी और जिसका अभिग्रहण इन संप्रेषक तकनीक के द्वारा, किसी एक विशेष समूह तक सीमित नहीं रहेगा।

8.4 इतिहासकार और उनके कार्य

जैसा कि पुरातन कथाओं में वर्णित है, बेहतर मध्यकालीन कार्य का लेखा समकालीन इतिहास में उन लोगों के द्वारा वर्णित हुआ है जो घटनाओं में स्वयं शामिल थे। यह फिर भी बहुत महत्त्वपूर्ण है कि कुछ लेखक जिन्हें उच्च सम्मान से सम्मानित किया जाता है उनकी कुछ ही पांडुलिपियाँ मौजूद हैं और अनुमानतः उनके समकालीनों द्वारा उन्हें सराहा नहीं गया। ऐसा एक कार्य था जॉन ऑफ सलिस्बरी (1115-1180 ई.) के द्वारा लिखित *हिस्टोरिया पोन्टीफिकलीस* (पादरियों का इतिहास) जो 1148-52 ई. तक वर्णित था और जॉन जो अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान थे, उस समय लिख रहे थे जब वह पोप की सेवा में थे। 12वीं शताब्दी यूरोप में धर्मनिरपेक्ष इतिहास-लेखन उभरा, जो जेफ्रोई द विलेहार्डुन (1160-1213 ई.) के कार्य में दिखा और जीन सिरे द ज्वाइनवीले (1224-1317 ई.) के इतिहास में, तथा जीन फ्रोइसोर्ट और फिलिप द कमिन्स (1445-1509 ई.) के कार्य में निरंतर शताब्दियों में भी दिखा।

दूसरी यूरोपीय मध्ययुगीन ऐतिहासिक लेखन की विशेषता यह थी कि यह वर्षों तक सार्वभौमिक ईसाई राज्यों के परलोकवादी अभिलाषा और वास्तविक जीवन के उद्देश्यपरक स्थितियों के बीच चौराहे पर खड़ी रही। यह वही संघर्ष था जिसने दूसरे महत्त्वपूर्ण इतिहासकार विशॉप ओट्टो ऑफ फ्रेजिंग (1112-58 ई.), जो उस समय के शासक कोनराड-III के सौतेले भाई थे, को विवश किया कि स्वर्ग से निष्कासन से अपने समय तक की कथा को एक उदास आख्यान की तरह प्रस्तुत करें। दो शहरों के इतिहास को, कभी-कभी क्रोनिका (पुराना) के रूप में इंगित किया गया, सात पुस्तकों में इतिहास का लेखा प्रदान किया गया, जिसमें से ओट्टों ने आठवीं पुस्तक को ईश्वर के शहर के भविष्य के रूप में जोड़ा जो कभी इतिहास घटित नहीं होगा। ओट्टो ने अपना कार्य 1146 ई. में समाप्त किया, वह वर्ष जिसमें दूसरा क्रूसेड प्रारंभ हुआ और जिससें वह, उनका भतीजा और भावी शासक फ्रेडरिक, और साथ ही साथ राजा कोनराड ने हिस्सा लिया। ओट्टो की कथा में साम्राज्यों के अस्थिरता के बारे में विलाप है जो उसके समय में लगातार बढ़ रही थी। इस अनुभव ने ओट्टो और उसके समकालीनों को यह सोचने के लिए बाध्य कर दिया कि वे काल के अंत में रह रहे थे; विश्व के अंत के साथ क्योंकि सभी चीजों में मौलिक बदलाव आ रहा था। और यद्यपि उन्होंने मानव नायकों को कुछ स्वतंत्रता बदलाव का प्रतिरोध या विकास करने के लिए दी, उन्होंने बलपूर्वक कहा कि बदलाव दैवी क्रियाओं के अधीन है और इसलिए मानव-अस्तित्व की एक अपरिवर्तित विशेषता है। इस प्रकार, अनुक्रम स्वयं अतीत के परिवर्तन की अंग बन गई और वर्तमान में जीवन की स्थिति ईश्वरीय शहर के आगमन के पूर्व ही थी।

इस तरीके से विश्व का इतिहास गणनीय, नियत, फिर भी अस्थिर अस्तित्व के रूप में मध्ययुगीन यूरोप के इतिहास-लेखन परंपरा में आया। किंतु, विश्व इतिहास का यह विचार जल्द ही दबाव में आ गया। इस दबाव के दो मुख्य कारक थे : पहला, दुनिया का एक ऐसा सतत् बेबाक अस्तित्व था जो जन्म मृत्यु के विश्वास के बावजूद भविष्यवाणी करता था कि दुनिया का खात्मा करीब है; और दूसरा कि पश्चिम में बारहवीं से तेरहवीं शताब्दी में अरस्तू की संकल्पना की अवधारणा थी कि काल अंतहीन प्रक्रिया है। प्रथम कारक दुनिया में ईसवी संवत के प्रयोग से समृद्ध थी, जिसने रोमन शासन के सांस्थानिक अनिरंतरता के साथ इतिहास-लेखन को संभाला। इसलिए यह पूर्ण रूप से जन्म-मृत्यु के विश्वास के विरुद्ध था जो भौमिक शहर को विश्व के अनंत अस्तित्व के रूप में देखता था। अरस्तू के समय की परिभाषा पश्चिम में पुनः प्रारंभ हुई उनकी अरबी अनुवाद के 12वीं और 13वीं शताब्दी के मूल कार्य के माध्यम से। अरस्तू की संकल्पना के अनुसार, काल सभी चीजों के गतिशील होने का कारण है, सभी दैवीय रचनाओं के भी ऊपर है। काल के इस संकल्पना के विस्तृत होने के परिणामस्वरूप, काल के बिना अस्तित्व दूसरे शब्दों में, यदि समय अथवा काल सभी चीजों के ऊपर है, तो अस्तित्व समय के बिना ज्ञात नहीं हो सकता और विश्व के बारे में सोचना परिवर्तन के बिना परीकथाओं और मामूली अनुमान का विषय बन गया था।

मध्ययुगीन यूरोप में स्मृति ऐतिहासिक परंपरा का एक महत्त्वपूर्ण संग्रह था। इसमें संत का संप्रदाय और पूर्वजों का सम्मान ने एक महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया था। प्राक् मध्ययुगीन यूरोप में प्राक् राजनीतिक समूह अतीत के रूप में परंपराओं को पुष्ट करने लगे। बहुत सारे इन राजनीतिक समूहों में शासक भावी पीढ़ियों को जन्मजात परंपरा को प्रदान करते गए जिसमें व्यवहार का प्रतिमान और साथ ही साथ परंपरागत समूहों का ढंग और संबंधित बोध भी शामिल था। इसलिए मौखिक कथाएँ अतीत (बीते हुए समय) का लेखा रखती थीं जिस पर विश्वास कथा करने वाले की प्रामाणिकता और उसके सामाजिक स्थिति पर निर्भर करता था। इसलिए ये परंपराएँ प्रदत्त नियमों को रूपांतरित कर पाईं। बदले में समूह सदस्यों के बोध और ढंग को निश्चित आकार दे पाईं। फिर भी धीरे-धीरे, विविध और वृहद् स्रोतों के प्रयोग के प्रति झुकाव बढ़ने लगा।

यह ओट्टो के कार्य में दर्शनीय था जिन्होंने अपने समय में विविध कालक्रमीय रूपरेखा ग्रहण की जो उन्हें उनके स्रोतों से प्राप्त हुई। बाइबिल से उन्होंने अपने प्रारंभिक कार्य के लिए वैश्विक युगों का कालक्रम लिया। आरोसियस (417 ई.) से उन्होंने रोम के स्थापना का कालक्रम उधार लिया और यह तर्क भी कि ईसाई धर्म का अस्तित्व विस्तार तथा निरंतरता को कैसे रोमन शासन से जोड़ा जा सकता था। किंतु यह बेडे थे जिनसे ओट्टो ईसा के जन्म से कालगणना के विचार को प्राप्त किए, जिससे कि वे अपनी कथा रोमन शासन के 5वीं शताब्दी के सांस्थानिक संकट से आगे बढ़ा सके। जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा है: 'जो चीज़ें मैने लिखी हैं उनके बारे में आपके मस्तिष्क पर या दूसरों के मस्तिष्क में संदेह को दूर करने के क्रम में यह मेरा कर्त्तव्य है कि संक्षेप में बताऊँ कि किन स्रोतों से मैंने सूचना ली है'। यह तरीका इतिहासकारों में काफी फैल गया। प्राचीन इतिहासकारों के विपरीत, मध्ययुगीन इतिहासकारों को सरकारी संग्रहों से उद्धरण देने में कोई हिचक नहीं थी। इंग्लैंड में, समकालीन इतिहासकारों द्वारा विधिक और प्रशासनिक विवरण प्रयुक्त किए गए, रोजर ऑफ होवडन की तरह जिन्होंने अपने इतिहास को सरकारी विवरण के संग्रह के रूप में बना दिया, जो लेखक के संक्षिप्त टिप्पणी के साथ मामूली रूप से जुड़ा था।

मध्य यूरोपीय इतिहास-लेखन की एक मुख्य समस्या इसके कालक्रमिक इतिहास बोध की थी। ऐतिहासिक परिवर्तन को राजनीतिक विकास या गिरावट या राज परिवर्तन के साथ जोड़ा गया, संभवतया स्थानीय सत्ताकेन्द्रों के परिवर्तन के साथ भी जोड़ा गया, और ऐतिहासिक घटनाएँ उनकी अल्पकालिक ढाँचे में ढाली गईं। किंतु ये परिवर्तन उनके ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुसार नहीं आँके, समझे या व्याख्यायित किए गए, सांरचनिक परिवर्तनों की तरह, समकालीन तरीकों में परिवर्तन या यहाँ तक कि ऐतिहासिक स्थितियों में भी। काल के रेखीय संकल्पना को मानने पर, लेखकों ने इतिहास के असाध्यता को पहचाना किंतु वे आने वाले युग के संपूर्ण बदलाव को नहीं जान पाए। इसलिए, वे पूरी तरह से 'वैकल्पिक अतीत' के अर्थ को नहीं समझ पाए या प्रत्येक युग के ऐतिहासिक विशेषता को भी। 12वीं शताब्दी, जैसा कि आधुनिक इतिहासकारों ने टिप्पणी की है, सामान्य रूप से 'अतीत की अतीतता' से संबद्ध नहीं था बल्कि कालविहीन नैतिक उपदेशों से संबद्ध था। भूत और वर्तमान सतत् कथा से मिल गए थे।

इस स्तर पर वर्तमान की दृष्टि से अतीत को देखने से कालदोष का ख़तरा था। उदाहरण के लिए, शार्लेमाग्ने को न सिर्फ सैनिक फ्रैंकिश शासक की तरह प्रस्तुत किया गया बल्कि धर्मयोद्धा और सामंत के रूप में भी। सीजर के 'जर्मनी की विजय' से संबंधित लेखा में रोमन कैंप मध्ययुग के दुर्ग बन गए और असंख्य सैनिक सामंतों में तब्दील हो गए, दंडाधिकारी मंत्री बन गए, और जर्मनिक लोग जर्मन बन गए।

कालदोष के अर्थ के प्रति अजागरूकता मध्ययुगीन इतिहासकारों और इतिहास को अजीब भटकाव का शिकार बनाता है। यदि कोई धार्मिक समुदाय ऐतिहासिक कथा को प्राप्त करना चाहती थी, तो उसने कुछ कार्य की नकल की जो आसानी से उपलब्ध था। पाण्डुलिपि के नए स्थान पर कुछ निरंतरता

में जोड़ा जा सकता था, और उसके बाद, यह संयुक्त भाग उतारा जा सकता था और आगे दूसरों लेखकों द्वारा बदला जा सकता था। इतिहासकारों को कम से कम छह पाण्डुलिपि प्राप्त हैं जिन्हें ऐंग्लो-सैक्सन इतिहास कहा जाता है। वे सभी 892 विचेस्टर, वेस्ट सैक्सन की राजधानी में रखे गए स्रोतों से लिए गए थे। रोमन शासन के काल से आधुनिक काल को जोड़ने की प्रवृत्ति उच्च मध्य-युग में ऐतिहासिक संकल्पना के विशिष्ट लक्षण को परिलक्षित करती है जो सटीक ऐतिहासिक तिथियों को निर्धारित करने और उसका विवरण रखने की प्रवृत्ति से विरोधाभास रखता है। एक तरफ, लेखकों ने बदलाव तथा विकास को स्वीकार किया और उन्होंने इतिहास में कालों को विभाजित किया, दूसरी तरफ, घटनाओं का उनका बोध एक 'कालहीन' अर्थ से विस्मृत कर देने वाले थे जिसने कालीय चरित्र के सच्चे अंतर को नजरअंदाज कर दिया जहाँ यह सत्ता, शक्ति और राज्य के राजनीतिक उत्तराधिकार से ऊपर चला गया। इसके विपरीत, इसने उन घटनाओं को, जो बहुत पुराने हो गए थे, सीधे तौर पर वर्तमान पर लागू किया।

यूनानियों और मुसलमानों से संपर्क के कारण इतिहास-लेखन और आगे बढ़ा। पाश्चात्यों के अन्य विचारों को प्रदर्शित करते हुए यूनानी इतिहासकार इतिहास वृत्त के रूप में इतिहास-लेखन शैली को वृहद् रूप में प्रयोग किए। यद्यपि यूनानी शासन की महान एकता और एकीकृत संस्कृति के प्रति दृढ़ता ने यूनानी कार्य को कुछ अधिक साहित्यिक गुणवत्ता प्रदान किया। मध्य युगीन इस्लामी इतिहासकार अल-ताबरी और अलमसूदी ने बड़े कार्यक्षेत्र का इतिहास लिखा, और हमेशा तथ्य को कल्पना-कथा से अलग करने के लिए परिष्कृत पद्धति अपनाई। लेकिन अरब मध्ययुगीन इतिहासकार इब्न खल्दून काफी आगे रहे, जिन्होंने शहरों की सभ्यता के उतार-चढ़ाव का लेखा अपने प्रारंभिक समाजशास्त्रीय इतिहास में किया। 15वीं शताब्दी में, अतीत को विश्व इतिहास के परिवर्तन के रूप में याद किया गया जो पूरी तरह से भौगोलिक, समुद्री विश्व का विस्तार भारतीय समुद्र मार्ग के खोज से शुरू हुआ था और जो काल्पनिक दक्षिणी महाद्वीप से जो अफ्रीका को एशिया से जोड़ने का विचार रखता था। धरती की सतह पर महाद्वीपों की बहुलता की पहचान से पारंपरिक मध्ययुगीन विश्व का चित्र और मध्ययुगीन वर्ष-गणना संकट में आ गई।

यद्यपि मध्ययुगीन पाश्चात्य इतिहास-लेखन परंपरा का आधार शास्त्रीय पुरातनता और ईसाइयत रही, बाद के मध्य-युग में भी उस धरोहर को सँभाला गया और इसे उसने बहुत बड़े स्रोत और कालक्रमीय रूप से संप्रेषित किया। इसने वृहद् प्रभाव से भी इसे ग्रहण किया जो यूरोप के तट को बाहर से स्पर्श कर रहे थे। इसलिए जो आरोप कभी-कभी लगाया जाता है कि मध्यकालीन इतिहासकार परिवर्तन की प्रक्रिया में जागरुकता नहीं दिखाते थे और वे इसे महसूस करने में असमर्थ थे कि पूर्व युग उनके युग से काफी अलग था, ठीक प्रतीत नहीं होता।

8.5 सारांश

इस इकाई में हमने पाश्चात्य मध्ययुगीन विश्व में इतिहास-लेखन की परंपरा और विकास के बारे में वर्णन किया है। यूरोप में इतिहास-लेखन चर्च इतिहास से शुरू हुआ। इन इतिहासों में काल की संकल्पना थी जो अपरिवर्तित थी क्योंकि यह दैवीय काल था। धीरे-धीरे, काल की संकल्पना में परिवर्तन हुआ। पूर्व ईसाई परंपरा से प्रभावित होकर, इतिहासकार अधिक सांसारिक शब्दों में काल को समझने लगे, एक मापकीय शृंखला के रूप में। समझने के इस तरीके ने इतिहास-लेखन में काल क्रम को संभव बना दिया। अरब और यूनान की दुनिया से संपर्क से अलग प्रभाव आया जिससे मध्ययुगीन इतिहास-लेखन प्रभावित हुआ।

8.6 अभ्यास

1) पश्चिम में मध्ययुग में काल की परिवर्तित संकल्पना पर विमर्श करें। इतिहास-लेखन को इसने किस प्रकार प्रभावित किया?

2) ईसाई इतिहास-लेखन पर एक टिप्पणी लिखें।

3) मध्ययुगीन यूरोप में कुछ महत्त्वपूर्ण इतिहासकारों और उनके कार्यों पर एक टिप्पणी लिखें।

8.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

डोनाल्ड आर. केली, *वर्जन्स ऑफ हिस्ट्री फ्रॉम एण्टीक्विटी टु दी एलाइटेनमेंट* (न्यू हावेन, 1991)।

आर.जी.कोलिंगवुड, *दि आइडिया ऑफ हिस्ट्री* (ऑक्सफोर्ड 1946)।

बेरील स्मैली, *हिस्टोरियन्स इन दी मिडिल एजेस* (लंदन, 1974)।

डेनिस हे, *एन्नालिस्ट्स एंड हिस्टोरियन्स : वेस्टर्न हिस्टोरियोग्राफी फ्रॉम दी एट्थ टु दी एटीन्थ सेन्चुरीज़* (लंदन,1977)।

इकाई 9 मध्यकालीन इतिहास-लेखन – अरबी और फारसी

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

अरबी (या इस्लामी सभ्यता) में इतिहास-लेखन की शुरूआत कुरान और हदीस (अर्थात् पैगम्बर परंपरा) में देखी जाती सकती है। पैगम्बर और उनके अनुयायियों का विस्तृत प्रसंग, जो कुरान में है, ने मुसलमानों के बीच एक ऐतिहासिक समझ को विकसित किया, और यह समय के साथ बढ़ती ही गई। इसने पाठकों को इस तथ्य से जागरूक किया कि इतिहास एक सतत प्रक्रिया है, जो महान् लोगों के महान् विचारों से प्रभावित होती है जिन्होंने मानव समाज में आकर इतिहास में एक महान् घटना घटित की है। इसने पैगंबर के जीवन और कार्यों के बारे में ऐतिहासिक सूचना प्रदान की और वह समुदाय जिसको उन्होंने नेतृत्व प्रदान किया उसके बारे में भी। इन सभी बातों ने काल के बारे में मुसलमानों के बीच जागरूकता पैदा की जिन्होंने इतिहास को सँजोने के महत्त्व को पहचाना और पैगंबर के जीवन तथा काल को सँजोने के महत्त्व को पहचाना, और उनके उत्तराधिकारियों के बारे में भी, जिससे आगे आने वाली पीढ़ी को लाभान्वित किया जा सके। इस्लामी इतिहास के पूर्व लेखकों द्वारा प्रत्येक प्रयास से लगता है कि उनका उद्देश्य सूचना के स्रोतों की प्रामाणिकता को सुनिश्चित करना था, क्योंकि कुरान अपने अनुयायियों को सत्य पर अमल करने की शिक्षा देता है।

तार्किक पद्धति, अर्थात् सिलसिला-इ इस्नाद (वाचकों की शृंखला), ने ऐतिहासिक घटनाओं के रिपोर्ट की प्रामाणिकता को सुनिश्चित किया जिससे काफी स्तर तक इतिहासकारों को अपने नज़रिये में वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में मदद मिली। वास्तव में स्रोतों का महत्त्व और उनका अन्य स्रोतों के माध्यम से प्रति मूल्यांकन प्रामाणिकता को पहली बार स्थापित करने की एक प्रक्रिया पैगम्बर के कार्यों और कथनों (हदीस) के संकलन से हुआ। ये संकलन विद्वानों द्वारा उनके विभिन्न घटनाओं के बोधन को विधिक उद्देश्य प्रदान करने के लिए हुआ था। परंपरा की प्रामाणिकता को जाँचने की कसौटी वाचकों की शृंखला के आधार पर बनी थी, इसके अलावा कुरान की शिक्षा, पैगंबर का जीवन और बोली जाने वाली अरबी भाषा और पैगंबर के काल में उनका लेखन भी इसकी कसौटी थी। यह एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक पद्धति थी जो चरित्र के परिवर्तन और अरबी इतिहासकारों में ऐतिहासिक सूचना की तार्किक सटीकता को व्याख्यायित करती थी। वास्तव में, इसने अरबी इतिहास-लेखन को इस्लामी संस्कृति का एक प्रमुख अंग बना दिया। इतिहास-लेखन के इतिहास के महत्त्व को समझते हुए, यहूदी विद्वान्, बर्नार्ड लेविस ने टिप्पणी की है: "अतीत के प्रति रुचि जल्दी ही मुस्लिम सभ्यता का विशेष अभिलक्षण बन गया। प्रारंभिक काल से ही मुस्लिम अस्तित्व की इकाइयों

जैसे राज्य, शासक, शहर, यहाँ तक कि पेशेवर लोग भी इतिहास में अपने नाम के प्रति सचेत हो गए। वे उनके कामों के प्रति रुचि रखते थे जो पहले चले गए और अपने रिकॉर्ड के प्रति चिंतित रहते थे उनके लिए जो बाद में आए। लगभग सभी शासक जिन्होंने मुस्लिम क्षेत्र पर शासन किया सभी ने कुछ इतिहास या इतिवृत्त ज़रूर छोड़ा, बहुत सारे देशों में, जिनमें कुछ उच्च सभ्यता की थी, गंभीर ऐतिहासिक लेखन इस्लाम के आने के साथ शुरू हुआ"।

9.2 प्रारंभिक अरबी इतिहास-लेखन

वैज्ञानिक इतिहास-लेखन अरबी में इस्लाम के दूसरी शताब्दी (आठवीं शताब्दी ई.पू.) से प्रारंभ हुआ और पैगंबर साहब के जीवन तथा कार्य से जुड़ा था। इसके पहले, सूचना के स्रोत के रूप में सिर्फ स्मृति-बैंक मात्र ही था। दूसरे धार्मिक परंपराओं में स्मृति बैंक हजारों साल तक जीवित रहते हैं किंतु इस्लामी परंपरा में इस्लाम के पहली शताब्दी के अंत के बाद, यह लिखित स्रोत से बदला गया। इसमें संदेह नहीं, मानव मस्तिष्क में अतीत की सूचना को सँजोकर रखने की अनोखी क्षमता है, फिर भी लम्बी अवधि सूचना और घटनाओं को नष्ट भी कर सकती है। घटनाओं की यह विकृति या अलग प्रकृति बुद्धिजीवियों के लिए कठिन कार्य बन गई। इस विचार से विद्वानों ने इन घटनाओं का निवारण विभिन्न परीक्षणों के द्वारा किया।

9.2.1 आठवीं और नौवीं शताब्दी के इतिहासकार

मुस्लिम विद्वानों द्वारा ऐतिहासिक साहित्य पर बहुत बड़ा संग्रह इस्लाम की दूसरी शताब्दी में लिखा गया। समय के प्रवाह में बहते हुए सभी मौखिक संग्रहों को एकत्रित करने के प्रयास किए गए। मौखिक परंपराएँ तार्किक ढंग से मूल्यांकित की गई और उनकी सत्यता की जाँच स्रोत की कसौटी के आधार पर करके शामिल की गईं। लेखक लोग धार्मिक उत्साह से अपने कामों को पैगंबर के इतिहास के रूप में इकट्ठा किए, अपने समकालीनों और नई पीढ़ी को लाभ और परामर्श देने के लिए। उनका काम मूल्यवान था क्योंकि जो ऐतिहासिक सूचना उसमें दी गई थी उसे सावधानी से लोक कथाओं और मिथकों को अलग करके जाँची गई थीं। दूसरे शब्दों में, इतिहासकारों ने ऐतिहासिक जवाहरातों को कूड़ा-करकट से अलग करने में कष्ट उठाया। प्रारंभिक इतिहासकारों में अली बिन मुहम्मद-अल-मदैनी (मृत्यु 840 ई.) का नाम लिया जा सकता है। वह एक बहुसर्जक लेखक थे, सूचना है कि उन्होंने सौ पुस्तकें लिखी थीं। खलीफा के इतिहास पर उनका कार्य और बसरा तथा खुरसान के इतिहास पर उनकी प्रबंध पुस्तक बड़े महत्त्व की है। यद्यपि कोई भी उनका कार्य समय की क्षति के साथ बच नहीं पाया, दूसरे लेखकों द्वारा उद्धृत उनके कामों के लेखांश उनके काम के महत्त्व के पुरोगामी प्रयास को प्रमाणित करते हैं। आलोचना की गम्भीर पद्धति अपनाने के कारण, उन्होंने अपने काम के लिए प्रसिद्धि हासिल की और इसने आगे आने वाले समय के संग्रह के लिए स्रोत का काम किया।

अल-मदैनी द्वारा प्रभावित होकर, मोहम्मद बिन ओमर-अल-वकीदी (मृत्यु 823 ई.), इब्न साद (मृत्यु 845 ई.) और अहमद बिन याह्या अल-बलाजुरी (मृत्यु 811 ई.) ने महत्त्वपूर्ण कार्यों को लेखबद्ध किया जिसने स्थायी छवि छोड़ी जो आगे के इतिहासकारों के लिए ऐतिहासिक सूचना में तार्किक सटीकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। अल-वकीदी का इतिहास सीधे कथात्मक शैली में लिखी गया है। उनकी *किताब अल-मगाजी* पैगंबर के द्वारा किए गए प्रचार की वृहद् जानकारी प्रदान करती है। इब्न साद ने पैगंबर का इतिहास तैयार करने में इससे सहायता ली किंतु पैगंबर के धमदिश, पत्रों, अनुबंध की प्रतियाँ जो उपलब्ध थीं को समाहित करके पूरित किया है। जहाँ तक अहमद बिन याह्या अल-बलाजुरी की बात है, उसने अपना प्रतिष्ठित इतिहास *फतह अल-बुल्दान* करीब (861 ई.) के बाद पूर्ण किया। *फतह-अल-बुल्दान* के प्रचलित प्रति का अध्ययन दर्शाता है कि इसके पूर्ण होने के पहले, संग्रहकर्त्ता ने एक पूर्व प्रति तैयार की थी जो कि अधिक भारी भरकम थी। लगता है कि अल-बलाजुरी ने सभी सूचनाओं को एकत्रित किया था जिसे उसने कई स्रोतों से संग्रह किया था। बाद में, उसने इसे परिनिष्ठित किया और उसे निकाला जो उसे प्रामाणिक नहीं लगे थे और अन्य

ऐतिहासिक सूचनाएँ जो उसने इकट्ठी की थीं उसको उसमें शामिल नहीं किया गया। इसीलिए, उसकी परिनिष्ठित प्रति अमूल्य बन गई और आने वाली पीढ़ियों द्वारा संरक्षित की गई। पैगंबर के जीवनी और उपलब्धियों पर सूचना के अलावा और खलीफा के समय घटित महत्त्वपूर्ण घटनाओं के साथ-साथ, अरबों द्वारा अरब से इतर लोगों की ज़मीनों पर विजय जैसे ईरान, माकरान, और भारत की सिंध राज्य पर विजय, ये सभी उनके कार्य में समाहित हैं। दूसरे अरब इतिहासकारों की तरह, उन्होंने इतिहास के महत्त्व को शुद्ध राजनीतिक घटनाओं और जीत के लेखा से मोड़कर बढ़ाया। उन्होंने जीते हुए भू-भाग में व्यवसाय और समाजार्थिक स्थिति का भी वर्णन किया है। उदाहरण के लिए, उत्तरी बलूचिस्तान को व्याख्यायित करते हुए, जो उन दिनों में कैकन नाम से प्रसिद्ध था उन्होंने लिखा है कि यह एक तुर्की कबीले द्वारा बसाई गई थी जो घोड़ों को जन्म देने वाले केंद्र चलाते थे। वह कहते हैं कि उनके द्वारा पैदा किए गए घोड़े खलीफा मौवीया द्वारा प्रशंसित थे और युद्ध के लिए अच्छे माने जाते थे।

9.2.2 दसवीं शताब्दी के इतिहासकार

उपर्युक्त इतिहासकारों द्वारा स्थापित शास्त्रीय परंपरा अपनी चरम परिणति पर मुहम्मद बिन जरीर अल-ताबरी (928 ई. में मृत्यु) के प्रशंसित इतिहास पुस्तक *तारीख़ अल-रसुल-मुलुक* (पैगंबर और राजाओं का इतिहास) में पहुँची। यहाँ यह बताना ज़रूरी है कि अल-ताबरी मूलत: परंपरावादी थे और इस्लाम की ऐतिहासिक परंपरा को सामने रखा जैसा कि उन्होंने अपने पूर्व के कार्य में पूर्ण शक्ति और तार्किक पद्धति को अपनाकर किया था। किंतु इस कमी के साथ-साथ उनकी सकारात्मक अच्छाई भी स्थापित हुई, जिसने कि अपने अधिकार और पूर्णता से एक युग की समाप्ति को रेखांकित किया। उन्होंने अपने कार्य में जिस प्रमाण को शामिल किया उसको सत्यापित करने के लिए सारे प्रयास किए। बाद के किसी संग्रहकर्ता ने अपनी तरफ से इस्लाम के प्रारंभिक इतिहास को ताजे रंग से जाँचने और संग्रह करने का काम नहीं किया, बल्कि या तो उनके *तारीख़* से लिया या वहाँ से शुरू किया जहाँ उन्होंने छोड़ दिया था। यह भी जोड़ा जा सकता है कि ताबरी का इतिहास महान् प्रार्थना के स्रोत को रिकॉर्ड करना था कि कैसे पैगंबर की शिक्षा युवाओं, और ग़रीबों के बीच इस्लाम के प्रारंभ में पहुँची। वह बताते हैं कि पैगंबर के प्रारंभिक साथी जिसमें से अधिकांश लोग मक्का के रईसों के द्वारा निम्न स्थिति के कारण नीचा दिखा दिए गए वही इस्लामी आंदोलन के नेता बन गए। आगे, ताबरी के *तारीख* ने उद्घोषित किया इस्लाम के वैचारिक वचनबद्धता को और मुस्लिम समुदाय के ज़मीन पार वैचारिक एकता को भी, यद्यपि उनके समय में राजनीतिक अलगाव शुरू हो चुका था। सारांश में, उनकी *तारीख़* महत्त्वपूर्ण है जहाँ तक इस्लाम के द्वारा यह सामाजिक-धार्मिक परिवर्तन आया, जैसे कि धार्मिक और उच्च-धार्मिक घटनाओं में तार्किकता, वैज्ञानिक चेतना का विकास और तार्किक अनुभूति जिसने ज्ञान के एक नए संगठन को और विश्व कल्पना में परिपक्वता को जन्म दिया।

अल-मसूदी, (मृत्यु 956 ई.) के साथ, जो अल-ताबरी के एक कनिष्ठ समकालीन थे, एक नया विद्वान् अरब इतिहास-लेखन में आया। अल-मसूदी, वास्तव में अरब इतिहासकारों में प्रमुख स्थान रखते हैं। वह इतिहासकार होने के साथ-साथ भूगोलवेत्ता भी थे। उनका भौगोलिक सूचना मुख्य रूप से उनके वृहद् पर्यटन के कारण था। इसलिए इतिहास और भूगोल को मिलाकर वह अरबी इतिहास-लेखन में एक नया आयाम जोड़ने में कामयाब रहे क्योंकि इतिहास एक निश्चित वातावरण में सम्पन्न होता है। अल-मसूदी एक देश के वातावरण को उसके लोगों के इतिहास के साथ अपने कार्य 'मुरुज अल-जहाब' (सोने का चारागाह) में जोड़ते हैं। उन्होंने वैज्ञानिक विवरण के सिद्धांत को पहचाना और मानव कार्यों और भौतिक तथ्यों के समत्व और अच्छाई को भी। यद्यपि अल-मसूदी लगातार 'सृष्टिविज्ञान' सिद्धांत को अन्य कार्यों से उधार लेते रहे, उनका मुख्य योगदान उनके यात्रा के परिणामों के प्रयोग और इतिहास के प्रति व्यक्तिगत आकलन और संबंधित घटनाओं पर कारण और प्रभाव को – मानवीय और भौतिक – ज्ञात विश्व के विभिन्न भागों के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा पहचानना था। यह भी बताने योग्य है कि अल-मसूदी इब्न खाल्दून के पूर्ववर्ती रहे हैं। इब्न खाल्दून चौदहवीं शताब्दी के अंत के अरब इतिहासकार थे जो इतिहास के तत्त्व ज्ञानी (दार्शनिक) माने जाते

हैं और आधुनिक समाजशास्त्र के जनक। क्योंकि अल-मसूदी का *मुरुज अल-जहाब* किन्हीं सैद्धांतिक आधार पर स्थित है, इसके लेखक ने विचारपूर्वक इतिहास के उद्देश्य और पद्धति पर बल दिया है। ये सभी प्राक् अरबी इतिहास-लेखन को विषयवस्तु और गुणवत्ता दोनों में धनी बनाते हैं। ये सभी बातें पूरे अधिकार के साथ विज्ञान के रूप में इसे पहचान दिलाते हैं। इस पहचान के साथ इतिहास त्वरित विस्तार के युग में पहुँच गया। इस्लामी युग की तीसरी से छठी शताब्दी में काफी संख्या में ऐतिहासिक कार्य लिखे गए। इसमें इस्लामी दुनिया के कई क्षेत्रों के इतिहास के कार्य भी शामिल हैं। प्रत्येक क्षेत्र का अपना इतिहास क्षेत्रीय इतिहासकारों द्वारा इकट्ठा किया गया। उदाहरण के लिए, अब्दल रहमान बिन अब्द अल्लाह इब्न अब्द अल हाकम (मृत्यु 871 ई.) ने पश्चिम में मिश्र और अरब के विजय के इतिहास को संग्रहित किया है। यह ध्यान देने योग्य है कि इस कार्य में जीत का लेखा परंपरा पर आधारित है, प्रामाणिक और अविश्वसनीय लोककथाओं का मिश्रित रूप था। अधिक गंभीर और सत्य, संभवतया, इस्लाम के तीसरी शताब्दी में स्थानीय इतिहासकारों द्वारा संग्रह किया गया। सभी नष्ट हो गए सिर्फ बगदाद का इतिहास छोड़कर, जिसे इब्न अबी ताहिर तैफूर ने संग्रहित किया था। वे सामग्रियाँ जो तीसरी शताब्दी के बाद संग्रहित की गई थीं, उनमें से कुछ आज भी सुरक्षित है और महत्त्वपूर्ण विषय उनमें शामिल हैं जो पहले के सामान्य इतिहास में उपलब्ध नहीं थे। यह अतिरिक्त सामग्री बड़े महत्त्व की है क्योंकि यह काफी मात्रा में ऐतिहासिक सूचना प्रदान करती है। दूसरा महत्त्वपूर्ण विकास जिसकी सूचना लेनी चाहिए वह है इस्लाम की चौथी शताब्दी के आगे के राजनीतिक इतिहास की रिकार्डिंग मुख्य रूप से कर्मचारियों और सभासदों द्वारा की गई। यह परिवर्तन रूप, संदर्भ और इतिहास-लेखन की आत्मा को प्रभावित करती है। इन अधिकारियों के लिए यह एक आसान काम था कि चलताऊ इतिहास वृत्त संग्रहित करें बजाय इसके कि घटनाओं और उनसे जुड़े हुए लोगों का तार्किक विश्लेषण करें। उनके सूचनाओं का स्रोत मुख्य रूप से सरकारी आँकड़े थे और अदालतों से उनके व्यक्तिगत संपर्क और उनके आसपास होने वाले कार्यकलाप। यह आवश्यक है कि उनके घटनाओं का प्रस्तुतीकरण उनके वर्ग को प्रतिबिंबित करता था जो संकुचित सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक दृष्टिकोण और उनके अपने हितों से प्रभावित होता था। ये इतिहासकार लगता है कि मुख्य रूप से शासकों के कार्यकलापों और राजदरबारों में होने वाली घटनाओं पर ही केंद्रित होना चाहते थे। फिर भी, उस समय की बाहरी राजनीतिक घटनाओं की सूचना इन लेखकों द्वारा जो दिया गया है वह मुख्यत: अधिक विश्वसनीय है यद्यपि उनकी सीमाओं के बावजूद। यह मिस्र और अंदालूसिया (अरब स्पेन) के ऐतिहासिक लेखन पर प्रमाणित हुआ है, जो लिखा गया है उबेद अल्लाह अहमद अल मुसाबीही (मृत्यु 1029 ई.) और इब्न हैयान अल-कुर्तुबी (मृत्यु 1076-77 ई.) द्वारा।

9.3 परवर्ती अरबी इतिहासकार

इस्लामी दुनिया में स्थानीय शासकों की संख्या में वृद्धि के साथ वंश इतिहास-लेखन की एक नई परंपरा का प्रारूप प्रारंभ हुआ। यह परंपरा 11वीं शताब्दी से अधिक मुखर हुई और आगे परंपरागत इतिहास-लेखन को जोड़ती है जो इस काल के दौरान बनी रही। यहाँ ये व्यक्तिगत तत्त्व इतिहास-लेखन में प्रारंभ हुआ जैसा कि शासक इतिहास लेखकों को इस काम में लगाने लगे और उन्हें संरक्षण देने लगे अपने वंश का इतिहास लिखने के लिए और उसी प्रकार अपनी उपलब्धियों को बढ़ाचढ़ाकर बताने के लिए। अब इतिहास एक बनावटी काम बन गया, आडंबर पूर्ण शब्दों से भरापूरा, जिसमें शैली का स्थान सामान्य कथाओं ने ले लिया। इस शैली को प्रसिद्धि दिलाई *तारीख-अल-यामिनी* ने, जिसे लिखा अल-उत्बी (1035 में मृत्यु) ने। ऐसे लेखों के लेखक तथ्यों को नष्ट करने के दोषी भले न हों लेकिन उनकी शैली दासता प्रदर्शित करती थी और उनमें तार्किक विश्लेषण की कमी होती थी जिससे उनका काम खराब इतिहास-लेखन की कोटि में आता था। ये काम किसी भी स्थिति में इस्लामी इतिहास के उच्चस्तरीय लेखन में नहीं गिने जा सकते जिसे बड़ी तन्मयता के साथ प्रारंभिक मुस्लिम विद्वानों ने विज्ञान का रूप प्रदान किया था। एक महत्त्वपूर्ण बिंदु को ध्यान में रखना है कि ऐसे इतिहास-लेखन के विषय जो सुल्तानों के संरक्षण में लिखे गए वे

राजनीतिक अधिक थे धार्मिक-राजनीतिक कम। धार्मिक तत्त्व उनमें सिर्फ विशिष्ट उद्देश्य से ही लाए गए थे जब उन्हें इसकी ज़रूरत पड़ी। ज़्यादातर इसको स्थान तभी मिला जब सुल्तान उलेमाओं को संरक्षण देते या उसे बढ़ाचढ़ाकर बताते हों या जब सुल्तानों की ईश्वरीय भय या धार्मिकता की प्रशंसा करनी हो। 11वीं शताब्दी से इस तरह के इतिहास-लेखन का विकास अरबी और फ़ारसी दोनों में हुआ, इस्लाम के हित में सुल्तानों के कार्यों को महिमा मंडित करने के लिए।

इस मोड़ पर फ़ारसी भाषा में ऐतिहासिक कार्य लिखा जाना शुरू हुआ। फ़ारसी इतिहास-लेखन की प्रकृति की चर्चा करने से पहले, अबु रेहान अल-बिरूनी (मृत्यु 1048 में) और इजुद्दीन इब्न अल-असीर (मृत्यु 1293) का संदर्भ लेना भी जरूरी है।

अल-बिरूनी ने गणितीय और खगोलीय विज्ञान का उपयोग काल-गणना के निर्धारण में अपनी पुस्तक *असर अल-बकिया* में किया, जबकि इब्न अल-असीर का इतिहास विद्वान् इतिहासकार के साथ ही साथ राजदरबारी इतिहासकार के पुनर्विकास को संकेतित करता है। इब्न अल-असीर का इतिहास *अल-कामिल* इसके संग्रहकर्ता के लिए महत्त्वपूर्ण है इतिहास के अल्प स्थिर प्रस्तुतीकरण के लिए, घटनाओं को वृत्तांत के रूप में संग्रहित करके उसे ऐतिहासिक प्रारूप प्रदान करने के लिए। उनके कार्य का लालित्य और जिंदादिली ने इसे बहुत जल्दी ही प्रसिद्ध बना दिया और यह आगे के संग्रहकर्ताओं के लिए स्तरीय स्रोत बन गया। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि उनके अरब भूमि के बाहर शासन करने वाले वंशों के लेखा में इब्न अल-असीर प्रसिद्ध कथाओं को भी शामिल करते थे जो ऐतिहासिक आधार से रहित होती थीं। अंत में विश्व प्रसिद्ध इतिहासकार इब्न खल्दुन (1406 में मृत्यु) की चर्चा करनी चाहिए। एक इतिहासकार के रूप में उनका काम कभी-कभी उत्साहरहित होता है। फिर भी वह उच्च कोटि के ऐतिहासिक दार्शनिक के रूप में सम्मानित हैं। उनका *मुकदिमा* (इतिहास की भूमिका) इतिहास के दर्शन की महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। यह कई आधुनिक भाषाओं में अपने महत्त्व के लिए प्रसिद्ध है। यह दुर्भाग्य है कि आने वाली शताब्दियों में जहाँ मिस्र में इतिहासकारों की एक कुशाग्र धारा थी और आत्तोमन तुर्की में इतिहास की एक सशक्त उपज थी लेकिन जहाँ 18वीं शताब्दी में ही *मुकदिमा* का अनुवाद किया गया, और जहाँ कोई भी इतिहासकार उनके दर्शन से प्रभावित नहीं था। इसका कोई संकेत नहीं है कि जो सिद्धांत उन्होंने आगे रखे थे उनका अध्ययन किया गया, उनके किसी भी उत्तराधिकारी ने बहुत कम ही इसका प्रयोग किया।

जहाँ तक इब्न खल्दुन के *मुकदिमा* का महत्त्व का सवाल है, उनके ऐतिहासिक सिद्धांत का सैद्धांतिक पक्ष, यहाँ पर जो वर्णित है, वह महत्त्वपूर्ण है। उनके *मुकदिमा* की मौलिकता उनके राजनीतिक सामाजिक, आर्थिक पक्षों की तर्कपूर्ण विश्लेषण है जो राजनीतिक इकाइयों के और राज्यों के विकास की आधारशिला है। यह भी उद्धृत करने लायक है कि जिस सामग्री पर उनका विश्लेषण आधारित है उनमें से कुछ उनके अपने अनुभव से निकले हैं और कुछ इस्लाम के इतिहास के ऐतिहासिक स्रोतों पर आधारित हैं। उनके और उनके पूर्ववर्तियों में विभेद यह कि पूर्ववर्ती मानव समाज के भूमंडलीय संकल्पना से शुरू करते हैं तो वह (इब्न खल्दुन) मानव सहयोग के गतिशील संकल्पना से प्रारंभ करते हैं। उनके सिद्धांत धर्म केंद्रित नहीं हैं, और कारण-कार्य संबंध और इतिहास में प्राकृतिक नियम पर उनके विचार मुस्लिम आध्यात्मिक विचारों के प्रखर विरोधी हैं। वह धर्म को एक कारक से अधिक नहीं मानते थे, जो एक महत्त्वपूर्ण कारक हो सकता है। उनके अनुसार, राज्य का नियम धर्म से निष्पादित हो सकता है, किंतु व्यवहार में राज्य अपने आपको अमूर्त रखता है इसके संपूर्ण वैधता में और स्वयं के उद्देश्य को मानता है। राज्य सत्ता लोगों की रक्षा के लिए अस्तित्व में होता है और राज्य में शान्ति को निश्चित करता है। यहाँ यह भी जोड़ा जा सकता है कि वह अधार्मिक व्यक्ति नहीं थे। फिर भी, अपने सिद्धांत के विस्तार में, *शरिया* (इस्लामी कानून) के आदर्श के साथ उन्होंने इतिहास के तथ्य के मेल-मिलाप की कोशिश की। वह मानते हैं कि तार्किक विकास और संपन्नता *शरिया* के अध्यादेश का पालन करके प्राप्त किया जा सकता है। उनके अनुसार इस्लाम में खलाफत एक आदर्श राज्य था। वह विस्तार से खलाफत से जुड़े संगठनों का वर्णन करते हैं। अपने वर्णन के क्रम में बताते हैं कि किस प्रकार बाद के उमायद काल में असबिया (पारिवारिक प्रेम) के दबाव

में खलाफत एक साधारण राजपरिवार में बदल गया। बाद में उमायद काल में खलीफा के अपने परिवार के लोगों को धार्मिक उत्साह बजाय ज़्यादा महत्त्व दिया गया। संक्षेप में, यह उनका *मुकदिमा* है कि जिसने उन्हें एक महान् इतिहास के दार्शनिक के रूप में आगे बढ़ाया।

9.4 फारसी इतिहास-लेखन

जहाँ तक फारसी भाषा में इतिहास-लेखन की शुरुआत की बात है, यह फारसी बोलने वाले विद्वानों के बल पर आगे बढ़ा, जो इस्लामी दुनिया के पूर्वी भाग में अरबी भाषा का व्यवहार नहीं करते थे। दसवीं शताब्दी के अंत में, ईरान और मध्य एशिया के अरब से अलग मुसलमानों ने सोचा कि इस्लाम पर लोगों की खुशी के लिए साहित्य तैयार किया जाए और इसका इतिहास लिखा जाए। यह महत्त्वपूर्ण है कि बहुत सारे प्रारंभिक कार्य अरबी के उत्कृष्ट साहित्य के अनुवाद और उसके संक्षिप्तीकरण थे, जो 938 ई. में ताबरी के *तारीख* के अनुवाद से शुरू हुए जिसे समानीद वजीर अबु अली अल-बलामी ने किया। कुछ स्थानीय वंशों का इतिहास फारसी भाषा में लिखा गया, और उन्हें बड़ी मुश्किल से समकालीन अरबी कार्यों से अलग किया जा सकता है, जिसे राजाओं के संरक्षण में तैयार किया गया। फारसी में लिखा गया अबु सईद गरदेजी का सुरक्षित इतिहास (*ज़ैन अल-अखबार*) और अबुल फज़ल बैहकी का इतिहास (*तारीख-इ आले सुबुक्तुगीन*) फारसी में ऐतिहासिक साहित्य का उच्चतम योगदान माना जाता है। यद्यपि गरदेजी ने अधिकांश हिंदुओं और उनके धर्म के बारे में अल-बिरूनी के लेखों से सहायता ली है, फिर भी उनके ज़ैन अल-अखबार में अतिरिक्त सामग्री गजना के सुल्तान महमूद (मृत्यु 1030 ई.) पर मिलती है। बैहकी के कार्य का महत्त्व मूलतः राज्य अभिलेख और उसके डायरी पर आधारित है जिसे वह बनाए रखता था।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि प्रसिद्ध कार्य, गरदेजी कृत *जैनल-अखबार,* और *बैहकी कृत तारीख-इ अले-सुबुक्तुगीन,* (लगभग 1050 ई. में मुद्रित किए गए) इस्लामी इतिहास पर अरबी लेखकों की परंपरा में लिखे गए। न तो गरदेजी और न ही बैहकी फारसी इतिहास-लेखन परंपरा से प्रभावित दिखते हैं जिसमें ऐतिहासिक तथ्य और कथा का मिश्रण साहित्यिक सौंदर्य के लिए किया गया था। फिर भी, क्षेत्रीय सल्तनत के प्रभाव में राजनीति और संस्कृति में जो परिवर्तन हुआ उसे इतिहासकारों द्वारा अनदेखी नहीं की जानी चाहिए। उनके ऐतिहासिक लेखन मुस्लिम राजनीतिक अन्वेषण को प्रकट करते हैं। फिर भी उनका महत्त्व ज़रूर यह दर्शाता है कि संग्रहकर्ता राज्य के गुणों और दुर्गुणों को उजागर करने में गंभीर थे। वे घटना की प्रामाणिकता के प्रति विशेष रूप से गंभीर थे उनको अपने कार्य में शामिल करने से पूर्व। प्राचीन फारसी इतिहासकारों के विपरीत, उनका कार्य भी मिथकीय तत्त्वों या कथाओं से मुक्त था। ये कार्य लंबे काल तक भारतीय और फारसी इतिहासकारों को प्रेरणा प्रदान करने के लिए एक प्रारूप बना। यह भी जोड़ा जा सकता है कि बैहकी के तारीख के कई खण्डों में से केवल एक सुल्तान मसूद के राज्य (1030-1040 ई.) के बारे में था और सुरक्षित रह सका। सुरक्षित खण्ड यह दर्शाता है कि राजनीतिक शक्ति का केन्द्रीकरण गजना के सुल्तान महमूद द्वारा किया गया जिसे उनके उत्तराधिकारियों द्वारा भी लगातार लागू किया गया, सेना के सभी अधिकारी और जवान अपनी तनख़्वाह और भत्ता रोकड़ (कैश) में प्राप्त करते थे और वित्त कार्यभार रोकड़ तनख़्वाह के बदले में निरंतर व्यवहार नहीं था। वास्तव में, सैन्य क्षेत्र की वृद्धि राजशाही के युद्ध विषयक कार्यों की वजह से पनपता था।

9.5 सारांश

कुरान और हदीस से प्रभावित होकर, अरबी विद्वानों ने 8वीं शताब्दी में इतिहास लिखना प्रारंभ किए। कुरान और दूसरे इस्लामी पुस्तकों में जो उपलब्ध था तथा मौखिक परंपरा से भी सामग्री संग्रह का प्रयास किया गया। 8वीं और 9वीं शताब्दी के इस इतिहास में पैगंबर उनके समर्थकों के जीवन और उनके कार्य को मुख्य विषय के रूप में पेश किया गया। बाद में, इन प्रारंभिक विषयों के साथ, कुछ अलग विषय जैसे धर्म का इतिहास, विजय का इतिहास और इस्लामी शासकों का इतिहास भी

शामिल किया गया। स्थानीय शासनों के विकास के साथ, वंश इतिहास ने प्रमुखता हासिल की और आगे अरबी-फारसी इतिहास-लेखन परंपरा में मुख्य विषय के रूप में उभरा।

9.6 अभ्यास

1) संक्षेप में अरबी इतिहास-लेखन परंपरा को प्रारंभ से 9वीं शताब्दी तक वर्णित कीजिए।
2) 10वीं शताब्दी में अरबी इतिहास-लेखन के मुख्य अभिलक्षण क्या हैं?
3) 11वीं और 12वीं शताब्दी के अरबी इतिहास-लेखन परंपरा में हुए परिवर्तनों को संक्षेप में लिखें।
4) फारसी के प्रारंभिक इतिहास-लेखन परंपरा को संक्षेप में लिखें। क्या इसने अरबी इतिहास परंपरा का अनुकरण किया?

9.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

डी.एस. मार्गोलिउथ, *लेक्चर्स ऑन अरबीक हिस्टोरियन्स*, लेक्चर्स V और VI।

शुकरी आरत्र मर्लेट, 'अरब हिस्टोरियोग्राफी', आर्टिकल पब्लिश्ड इन दी *इस्लामिक कल्चर*, हैदराबाद, वोल. LXIII, नं. 4, अक्टूबर, 1989, पृ. 95-105।

फ्रांज रोसेंथल, *ए हिस्टरी ऑफ मुस्लिम हिस्टॉरियोग्राफी*, पार्ट I, द इंट्रोडक्टरी चैप्टर।

हमिल्टन ए. आर. गिब्ब 'तारीख फ्राम द ओरिजीन्स टु दी थर्ड सेंचुरी ऑफ हिजरा, पृ. 108-119 *स्टडीज़ ऑन दी सिविलाइजेशन ऑफ इस्लाम*, लंदन, 1962।

इकाई 10 मध्यकालीन इतिहास-लेखन – इंडो-पर्शियन

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

भारतीय इतिहास में उत्तर भारत पर गौरी का विजय 12वीं शताब्दी के अंत का एक महत्त्वपूर्ण घटनाक्रम है। क्योंकि स्वतंत्र सल्तनत, जो इसके परिणामस्वरूप बना, ने एक तरफ भारत पर विदेशी प्रभाव का मार्ग खोला दूसरी तरफ देश को एक मज़बूत केंद्र के अंतर्गत एकीकरण की तरफ ले गया। इसने पड़ोसी आगंतुकों से भी देश को परिचित कराया जो विभिन्न सांस्कृतिक परंपराओं का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। उनके द्वारा इतिहास-लेखन की परंपरा प्रारंभ की गई। फारसी भाषा में इतिहास-लेखन की परंपरा प्रारंभ की गई। फारसी भाषा में इतिहास-लेखन का साहित्य उनके द्वारा प्रचूर मात्रा में तैयार किया गया। वास्तविकता यह है कि मुस्लिम संभ्रांत वर्ग में विधिशास्त्र और धार्मिक पांडुलिपि के बाद इतिहास-लेखन तीसरा महत्त्वपूर्ण अध्ययन माना जाता था। 16वीं शताब्दी में मुगलों के आगमन के बाद इतिहास-लेखन परंपरा ने नई ऊँचाई प्राप्त की।

मुगल काल के दौरान राज्य के इतिहास-लेखन को संरक्षित किया गया और हमारे पास दो शताब्दियों का फारसी भाषा में ऐतिहासिक साहित्य काफी मात्रा में उपलब्ध है। इस इकाई में हम इतिहास-लेखन परंपरा का सल्तनत और मुगल काल के दौरान विश्लेषण करेंगे।

10.2 सल्तनत काल

फारसी में तुर्कों के बारे में इतिहास-लेखन जो 12वीं शताब्दी में भारत में आए उसी समय से पाया जा सकता है। जहाँ तक दिल्ली सल्तनत की बात है हमारे पास लगातार उपलब्ध पाठ फारसी भाषा

में सल्तनत (1526) के अंत तक का है। बहुत सारे लेखक राजदरबार में अधिकारी के पदों पर तैनात थे जबकि बहुत कम स्वतंत्र थे और सरकारी पदों पर तैनात नहीं थे। आमतौर पर, जो इतिहास उपलब्ध है वह घटनाओं का सरकारी पक्ष है न कि नीतियों और घटनाओं का तार्किक मूल्यांकन।

यह दुर्लभ है कि कोई सूचना एक शासन कर रहे सुल्तान विरोधी संदर्भ में आए। यहाँ तक कि शैली भी साधारणतः सुल्तान की प्रशंसा या चापलूसी से भरपूर होती थी जिसके शासन में यह लिखा जाता है। बहुत सारे मामलों में, लेखक मुक्त रूप से पूर्व कार्यों से उद्धरण देते थे पूर्व काल के बारे में बताने के लिए।

ऐतिहासिक पाठ के अलावा दूसरे फारसी के कार्य उस काल के लिए उपलब्ध हैं। अब्दुर्रज़्ज़ाक का *मातला देन* (यात्रा-वृत्तांत), तुत्सी का *सियासतनामा* (प्रशासन और राजनीति), फक्र-इ मुदाबिर का *अदबुल-हर्ब वास-शुजाअत* (युद्ध) कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य हैं। कुछ अरबी के कार्य भी उस काल के उपलब्ध हैं। इब्न बतुता (रिहला) और शिहब-अल दीन अल-उमरी (मसालिक अल-अब्सुर ममालिक अल-अंसार) ने बहुत अच्छे यात्रा वृत्तांत प्रदान किए हैं। हम पूरे सल्तनत काल के इतिहास-लेखन को अलग से उपखंडों में अध्ययन करेंगे।

10.2.1 पथ-प्रदर्शक

इतिहास-लेखन का पथ-प्रदर्शक मुहम्मद बिन मंसूर था, जो फख्र-इ मुदाबीर के नाम से भी जाना जाता था। वह गजना से लाहौर में परवर्ती गजनवीद काल में बस गया। लाहौर में उन्होंने शज़रा-इ अंसाब का संग्रह किया, जिसमें इस्लाम के पैगंबर की वंशावली है, उनके साथी और मुस्लिम शासक, सुल्तान मुजुद्दीन मुहम्मद बिन साम (सामान्य रूप से सुल्तान शिहाबुद्दीन मुहम्मद गौरी) के पूर्वजों के समेत। संग्रहकर्ता इसे सुल्तान को प्रस्तुत करना चाहता था किंतु रास्ते में उसकी हत्या 1206 में पंजाब से गाजना जाते वक्त हो जाने से, उसने अलग भाग *मुकदिमा* (भूमिका) इसमें जोड़ा। यह भूमिका कुतुबुद्दीन ऐबक के जीवन और सैनिक कारनामों की कथा वर्णित करती है। गौरी के विजयों का और भारत में स्वतंत्र सल्तनत के नींव का यह पहला इतिहास था।

यह सुल्तान मुजुद्दीन मुहम्मद बिन साम के अच्छे गुणों के वर्णन को प्रकट करता है। किंतु भारत में जीत का श्रेय कुतुबुद्दीन ऐबक को दिया जाता है। उसके द्वारा किए गए अभियान में सुल्तान का नाम कहीं भी नहीं आता है। फिर भी फख्र-ई-मुदाबीर के द्वारा कुतुबुद्दीन ऐबक के हिन्दू राजाओं के प्रति समझौतापूर्ण रणनीति की योजना, यहाँ तक कि उसके राज शासन पर सिंहासनारूढ़ होने के पहले का वर्णन बहुत ही दिलचस्प है। ऐबक ने जो उदाहरण प्रस्तुत किया उसने उसके उत्तराधिकारियों को भी प्रेरित किया। सभी प्रमुख जिन्होंने ऐबक की प्रभुता को स्वीकार किया उनके साथ मित्र की तरह व्यवहार हुआ।

इसमें संदेह नहीं कि, फक्र-इ मुदब्बीर ने अपने कार्यों का संग्रह पुरस्कार पाने की आशा से राज कर रहे सुल्तान की प्रशंसा करके किया था, फिर भी, ऐतिहासिक सामग्री का चयन उनके ऐतिहासिक ज्ञान को इंगित करती है। प्रशासनिक सुधार जिसे ऐबक ने शुरू किया था लाहौर में अपने राज सिंहासन पर आरूढ़ होने पर, उसने बहुत सारे रीति-रिवाजों का भी वर्णन किया जिसका सांकेतिक महत्त्व था। उदाहरण के तौर पर, वह पहला इतिहासकार था जो हमें सूचित करता है कि नए सुल्तान के प्रति जनता एक समारोह में किस प्रकार अपनी स्वामिभक्ति उसके लाहौर राज्य में प्रकट करती है। वह कुतुबुद्दीन ऐबक के दिल्ली से लाहौर के आगमन को 1206 ई. में प्रकट करता है कि कैसे लाहौर की पूरी जनसंख्या नए सुल्तान के प्रति अपनी स्वामिभक्ति प्रकट करने के लिए बाहर आती है। यह समारोह, वास्तव में, सुल्तान की प्रभुता की दावेदारी के सांचालिक योग्यता को संकेतित करती है। उसने योग्य लोगों को भूमि अनुदान किया और दूसरों के लिए रखरखाव भत्ता नियत किया। किसानों

या बंधुआ मज़दूरों के द्वारा अन्यायपूर्व ढंग से अधिग्रहीत संपत्ति और उसका संग्रह खत्म कर दिया गया। संग्रहकर्ता यह सूचित करता है कि राज्य पूरे खेती के उपज का पाँचवाँ हिस्सा भूमि राजस्व के रूप में ग्रहण करता था। संक्षेप में, यह गौरी के विजय तथा कुतुबुद्दीन ऐबक के राज्य का पहला इतिहास है जो भारत में संग्रहित हुआ। यह इसके महत्त्व में विचारणीय है कि 1927 ई. में अंग्रेज़ विद्वान्, ई. डेंसन रॉस ने इसे *शजरा-इ अंसाब* पांडुलिपि से अलग किया और इसको तार्किक रूप से संपादित करके पाठ को प्रकाशित किया अपनी अंग्रेज़ी भूमिका के साथ *तारीख-ई-फ़खरुद्दीन मुबारक शाह* शीर्षक से।

दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य *अदबुल-हर्ब-वास-शुजाअत,* मुद्बीर के द्वारा संग्रहित किया गया जो सुल्तान शम्सुद्दीन इल्तुतमिश को समर्पित है। यह वृत्तात्मक रूप में लिखा गया इतिहास-लेखन है। इसमें राजा के कर्त्तव्यों पर अध्याय है, राज्य के विभागों का संचालन, युद्ध कौशल, युद्ध नियम, युद्ध अश्व, उनके उपचार आदि पर अध्याय हैं। संग्रहकर्त्ता ने एक क्रम में, उस काल के दौरान हुए महत्त्वपूर्ण घटनाओं को उसने शामिल किया है। उनमें से बहुत सारे गजनवी काल के ऐतिहासिक घटनाओं से संबंधित हैं।

गौरी के विजय और सल्तनत का महत्त्वपूर्ण इतिहास है – *ताजुल-मा-आसीर*। इसके लेखक, हसन निज़ामी निशापुर से भारत अपने भाग्य की खोज में बस गए। ऐबक के राजसिंहासन पर आरूढ़ होने के कुछ पहले उन्होंने दिल्ली में शरण ली। दिल्ली में, उन्होंने कुतुबुद्दीन ऐबक के उपलब्धियों का इतिहास संग्रहित किया उसके 1206 ई. में सिंहासन पर बैठने के बाद। इतिहास लिखने के पीछे शासकीय संरक्षण पाने की लालसा थी। एक साहित्यिक प्रतिभा पाकर और अरबी, फारसी के कविताओं को लिखने में माहिर होकर, हसन निजामी अत्यधिक रूपक, उपमा और अलंकारों को साहित्यिक सौंदर्य के लिए प्रयोग करते थे। उनका कार्य अनावश्यक शब्दाडम्बर से भरपूर है। शब्दाडम्बर और अनावश्यक वर्णन हटाकर, ऐतिहासिक सामग्री विषयवस्तु को कम किए बिना लगभग आधे पुस्तक की आकार में लाई जा सकती है।

जहाँ तक उनके विचार का सवाल है, वह अपनी कथा अपने समय के बदलते परिदृष्य के साथ अपने गृह नगर निशापुर से करते हैं। अपनी गाजना यात्रा के दौरान वे बीमार पड़ गए और बाद में भारत वापस आ गए। आमुख तराईं (1192 ई.) के द्वितीय युद्ध से शुरू होता है। तराई के प्रथम युद्ध का जिक्र नहीं है जहाँ पृथ्वीराज चौहान ने सुल्तान मुइजुद्दीन मुहम्मद बिन साम को हराया था। फिर भी, वर्ष 1192 ई. से 1196 ई. तक सभी ऐतिहासिक घटनाओं का विस्तार से वर्णन है। उसके बाद, हसन निजामी कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा 1202 ई. तक सारी लड़ाइयों और जीत को छोड़ते हुए एक लंबी छलांग लेते हैं। संभवत: 1210 ई. में ऐबक के दुर्घटना में मृत्यु हो जाने से विघ्न आ गई जिससे लेखक निराश हुआ और लगता है कि लिखना भी बंद कर दिया। बाद में, जब इल्तुतमिश ने उत्तराधिकारी के रूप में राज्य को संघटित किया, उसने पुन: अपना काम शुरू किया। इस समय वह अपनी कथा 1203 ई. से शुरू करता है क्योंकि इल्तुतमिश जिसको कार्य प्रस्तुत करना था एक महत्त्वपूर्ण सेनापति बन चुका था और कुतुबुद्दीन ऐबक के बदायूँ के विजय की चर्चा नहीं की गई है और 1198 ई. में कन्नौज तथा छंदवार के अधिग्रहण की भी चर्चा नहीं है, फिर भी, यही कहा जा सकता है कि अतिशयोक्तिपूर्ण उक्ति ऐबक के बारे में प्रयुक्त होने के बावजूद, संग्रहकर्त्ता को यह क्रेडिट दी जानी चाहिए कि उसने प्रामाणिक सूचनाएँ इकट्ठी की थीं यहाँ तक कि उसे वह अपने कार्य में वर्णित भी करता है। हसन निज़ामी ऐबक द्वारा स्थानीय राजाओं के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार को दर्शाने में असफल रहे जिन्होंने अपनी प्रभुता सौंप दी थी। उनका वर्णन बहुत ही संक्षिप्त हैं और एक समय बहुत ही सांकेतिक। उदाहरण के लिए, जब वह कहता है कि हिंन्दू राजा सुल्तान के राजदरबार में जाते हैं, तो सामान्य तौर पर प्रकट करता है, "शुभ राजदरबार का गलीचा भारत के *रईस* के लिए चुम्बन करने योग्य स्थान बन गया"। इसमें महान् लोगों का जीवनीपरक वर्णन नहीं है, यद्यपि बहुत सारे लोग सल्तनत के निर्माता रहे थे। *ताजुल मा असीर* की भारत और विदेशों में भी उपलब्ध पांडुलिपि प्रतियाँ 1217 ई. में लाहौर में इल्तुतमिश के निकट अधिग्रहण में थीं।

मिन्हाज सिराज जुज़ानी द्वारा संग्रहित उनकी *तबाकत-इ नसीरी* इतिहास-लेखन में युगान्तरकारी थी। मिन्हाज सिराज जुज़ानी (बाद में मिन्हाज के रूप में उद्धृत) खोरसान के एक प्रवासी विद्वान थे। उनका इस्लाम और मुस्लिम शासकों के प्रति नज़रिया उनके एक न्यायवादी की तरह व्यावसायिक प्रशिक्षण से प्रभावित लगता है। वह विद्वानों के एक ऐसे परिवार से संबंध रखते थे जो गाजना और फिरोजकुह के राजदरबारों से संबंधित रहे हैं। वह स्वयं कई राजकुमारों और कुलीनों के साथ अपने भारत प्रव्रजन के पहले कार्य कर चुके थे। 1227 ई. में, वह भारत आया और नसीरुद्दीन कुबचा के राजदरबार में शामिल हुआ। वह सुल्तान नसीरुद्दीन कुबचा की राजधानी उच्छ में *फिरुजी मदरसा* (सरकारी कालेज) के मुखिया पद पर नियुक्त हुआ। 1228 में, वह सुल्तान इल्तुतमिश की सेवा में शामिल हो गया जब कुबचा की सत्ता नष्ट हो गई और उसके सिंध और मुल्तान के क्षेत्र दिल्ली सल्तनत के साथ जोड़ दिए गए। सुल्तान रज़िया (1236-40 ई.) ने उन्हें दिल्ली बुलवाया और दिल्ली में *मदरसा-इ नसीरी* के मुखिया पद पर नियुक्त किया। बाद में सुल्तान नसीरुद्दीन महमूद के शासन के दौरान वह सल्तनत के मुख्य काज़ी पद पर आसीन हुए।

सुल्तान नसीरुद्दीन महमूद के शासन के दौरान ही उन्होंने अपने जीवन काल तक इस्लाम के इतिहास को लिखने का निश्चय किया। अपने काम को फख्र-इ मुदाबीर और हसन निजामी से अलग रखने के प्रयास में मिन्हाज ने *तबाकत* इतिहास-लेखन-पद्धति अपनाई। पहले के दो लेखकों ने अपने काम को एकांशात्मक रूप में लिखा है, जिसमें प्रत्येक शासन को एकांश के रूप में रखा गया है। *तबाकत* रूप में, प्रत्येक वंश और शासक अलग *तबका* (खण्ड) में प्रस्तुत किया जाता है और सन् 1259 ई. में पूरा किया गया।

अंतिम पाँच खंड इतिहास की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें हम केंद्रीय एशिया के शासनों के उतार-चढ़ाव के बारे में महत्त्वपूर्ण सूचना पाते हैं और के परसिया और भारत पर चंगेज़ खाँ मंगोल आक्रमण के बारे में भी। निश्चित रूप से, घुर के शासकीय घराने पर मिन्हाज हमारे प्रारंभिक और बेहतर विशेषज्ञ हैं। उनका घुर के शासकों का लेखा अपने नज़रिये में वस्तु-निष्ठता से चित्रित है। उसी तरह, ख्वारिज्म शाही वंश के इतिहास के प्रति समर्पित खंड और चंगेज खाँ के नेतृत्व में मंगोल सत्ता का चढ़ाव और उसके तुरंत बाद के उत्तराधिकारियों के बारे में सूचना मिलती है, जो कि अता मालिक जुवैनी और रहिदुद्दीन फजलुल्ला के कार्यों में नहीं मिलती जिन्होंने मंगोल राजकुमारों के संरक्षण में लिखा था। मिन्हाज के उद्देश्य दिल्ली सल्तनत के इच्छुक पाठक को यह प्रामाणिक सूचना प्रदान करना था कि मंगोलों ने मुसलमानों पर विजय प्राप्त की और मुस्लिम नगरों और शहरों को ध्वस्त किया। उन्होंने कई स्रोत का इस्तेमाल किया जिनमें कई व्यापारी और अप्रवासी शामिल थे जिनका मंगोल शासकों के साथ व्यापारिक संबंध था। इसके अतिरिक्त, उनके भारत प्रवास के पहले, उसका खुरासन में मंगोलों के विरुद्ध लड़ने का पहला अनुभव था। इसलिए, कार्य का अंतिम खंड आधुनिक विद्धानों के द्वारा मंगोल सत्ता के वर्णन के लिए अमूल्य माना जाता है। 1259 ई. में मंगोल शासन का विघटन शासक मूँगे खान की मृत्यु के बाद होता है।

बीसवां और इक्कीसवां खंड भारत को समर्पित है, जो ऐबक से लेकर सुल्तान नसीरुद्दीन महमूद शाह तक इसमें वर्णित है। यह प्रमुख कुलीन पुरुषों का जीवन वृत्त है जिसमें इल्तुतमिश तक शामिल हैं। दोनों खंडों में उसने इन मामलों पर तार्किक सूचना दी है। एक इतिहासकार के रूप में अपने कर्त्तव्यों के प्रति वह सचेत है। चूँकि सुल्तान इल्तुतमिश का उनके बेटे के कारण आलोचना नहीं की जा सकती थी, जो शासक सुल्तान होता था, मिन्हाज इल्तुतमिश की आलोचना उसके चिर प्रतिद्वन्दियों के अच्छे गुणों को प्रकाशित करके करता था जिनमें शामिल थे बिहार और बंगाल के सुल्तान हयासुद्दीन इवाज खिलजी या मुल्तान और सिंध के सुल्तान नसीरुद्दीन कुबचा। मलिक सैफुद्दीन ऐबक की प्रशंसा में वह कहता है कि वह अल्लाह से डरने वाला मुसलमान था और सुल्तान के आदेश पर मारे गए कुलीनों के बच्चों से उनकी सम्पत्ति नहीं छीनता था। यह वास्तव में मिन्हाज की इतिहास की समझ थी कि जिसने जियाउद्दीन बरनी को श्रद्धांजलि देने के लिए बाध्य किया।

बरनी ने *तबाकत-इ नसीरी* के काल में लिखने को बेअदबी माना। बल्कि वह अपना लेखन सुल्तान गयासुद्दीन बल्बन के शासन से प्रारंभ करना अच्छा समझते थे।

10.2.2 चौदहवीं शताब्दी का इतिहास-लेखन

बहुत से विद्वानों ने 14वीं शताब्दी के खिलजी और तुगलक सुल्तानों के इतिहास को लिखा है। जियाउद्दीन बरनी सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के शासन की ताजुद्दीन इराकी के पुत्र कबीरुद्दीन के द्वारा सरकारी इतिहास की चर्चा करते हैं, किंतु यह अब नहीं प्राप्त है। अमीर खुसरो ने भी *सरूखजैनुल फतह* का संग्रह किया है, जो अलाउद्दीन खिलजी की उपलब्धियों को समर्पित है। खुसरो ने कुछ ऐतिहासिक मसनवी (कविता) का भी संग्रह किया है जिसमें प्रत्येक में ऐतिहासिक घटनाओं को पद्य रूप में वर्णित किया गया है। फिर भी यह साफ किया जा सकता है कि न तो जियाउद्दीन बरनी और न ही आधुनिक विद्वान पीटर हार्डी खुसरो को इतिहासकार के रूप में मान्यता प्रदान करते हैं। वे खुसरो के काम को साहित्यिक कृति मानते हैं न कि ऐतिहासिक कार्य। अभी तक सुरक्षित 14वीं शताब्दी के कार्यों में, इसामी का *फतह अस सलातीन* (1350 ई.), जियाउद्दीन बरनी का *तारीख-ई-फिरुजशाही* (1357 ई.), अज्ञात नाम लेखक द्वारा *सिरत-ई-फिरूजशाही* (1370-71 ई.) और शम्स सिराज अफीफ का *तारीख-इ फिरुजशाही* (c.1400) महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य हैं। 14वीं शताब्दी के कुछ कार्यों को अलग से भी विश्लेषित किया जाना चाहिए।

इसामी का आख्यान

इसामी का *फतह-उस-सलातीन* भारत के मुस्लिम शासकों का छन्दोबद्ध इतिहास है। यह सुल्तान महमूद के गाजना के शासन (999-1030 ई.) की लेखा से शुरू होती है और दक्कन में बहमनी सल्तनत की नींव के साथ खत्म होती है जिसे अलाउद्दीन बहमन शाह (1030 ई.) ने सुल्तान महमूद तुगलक के घोर विरोध में शुरू किया था। यद्यपि लेखक के बारे में ज़्यादा जानकारी नहीं है, फिर भी यह जोड़ा जा सकता है कि उसके पूर्वजों ने दिल्ली के अदालत में सुल्तान इल्तुतमिश के समय में काम किया था। जियाउद्दीन बरनी शामिल करते हैं सुल्तान बलबन के प्रमुख कुलीनों में इसामी के एक परिवार को भी। इसामी, स्वयं अपने दादा इजुद्दीन इसामी के द्वारा पाले पोषे गए थे। वह अभी किशोर ही था कि उसका परिवार बलपूर्वक 1327 ई. में दौलताबाद स्थानान्तरित कर दिया गया। उसके दादा की रास्ते में ही मृत्यु हो गई और युवक इसामी सुल्तान मुहम्मद तुगलक के प्रति घृणा-भाव से भर गया। सुल्तान मुहम्मद तुगलक के प्रति उसका वैर-भाव उसके लेखन में काफी प्रामाणिक है और इसे सावधानी से देखा जाना चाहिए।

इसामी की प्रारंभिक भाग की कथा प्रसिद्ध अनुश्रुतियों और मौखिक परंपराओं पर आधारित है जो उसके पास समय के साथ पहुँची। भारत के प्रारंभिक सुल्तान का लेखा प्रसिद्ध कथाओं पर पूर्व कार्यों से प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है। किंतु सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के शासन की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन अधिक प्रामाणिक हैं और पूरक तथा समर्पित महत्त्व की हैं। इस भाग में इसामी बरनी के *तारीख-इ फिरूजशाही* से सूचना ग्रहण कर पूर्ति करते हैं दिल्ली सल्तनत के सैन्य दस्ते द्वारा खिलजी और तुगलक काल में देश के भिन्न भागों में घेराबंदी कर आक्रमण करना। इसामी का वर्णन मुहम्मद बिन तुगलक द्वारा दूसरी महत्त्वपूर्ण शहर के रूप में दौलताबाद की नींव रखना और उसका लेखा अलाउद्दीन खिलजी के राज में दिल्ली का सामाजिक-आर्थिक विकास और दूसरे शहरों का ग्राफीय और पूर्ण जानकारी देने वाला है। बरनी के पास इसामी की पूर्ववर्तिता थी सिर्फ ऐतिहासिक घटनाओं से संबंधित उनके कारण और प्रभाव के विश्लेषण के बल पर।

ज़ियाउद्दीन बरनी का *तारीख-इ फिरूजशाही*

इसमें संदेह नहीं कि बरनी मध्यकालीन भारत के इंडो-फारसी के प्रमुख इतिहासकारों में से एक थे। एक आभिजात्य परिवार में जन्में और पीढ़ियों से दिल्ली के शाही राजमहल से जुड़े, वह निश्चित तौर

से दिल्ली सल्तनत के भाग्य से नाता रखते थे। ऐसा लगता है कि उनका विश्वास था कि *तारीख़*-इ *फिरूजशाही* के द्वारा यह उनका कर्त्तव्य था कि वह अपने समय के शासन करने वाले अभिजात्यों की जानकारी इस संग्रह के माध्यम से दें।

बरनी की *तारीख* 1266 ई. में सुल्तान बलबन का दिल्ली के राजसिंहासन पर अधिग्रहण से शुरू होता है और खत्म होता है सुल्तान फिरूजशाह तुगलक के पिछले छह वर्षो के शासन के लेखन से, जो कि है वर्ष 1356 ई.। बरनी का *तारीख* फारसी इतिहास-लेखन परंपरा में उसके समय तक अनूठा रहा है। यह पहली बार है कि वह घटनाओं के कारण उसके परिणाम को विश्लेषित करता है और राजनीति तथा आर्थिक विकास को भी व्याख्यायित करता है। उसका लेखन अलाउद्दीन खिलजी की आर्थिक नीतियों का कारणों के साथ विश्लेषण प्रदान करता है और नीतियों के निर्धारण तथा उसके प्रभाव को भी व्याख्यायित करता है। बरनी स्पष्ट शब्दों में इतिहास-लेखन के उद्देश्य को भी व्याख्यायित करता है :

> 'औसत, मध्यम, कच्चे, गँवार, दरिद्र, बुनियाद, अस्पष्ट, दुष्ट, दीन-हीन, दु:खी, छोटे कुल में जन्मा; और बाज़ार के व्यक्ति का इतिहास के साथ कोई संबंध नहीं हो सकता; न ही इसका अनुसरण उनका व्यवसाय हो सकता है। ऊपर उद्धृत वर्ग के लोग इतिहास की जानकारी से कुछ भी हासिल नहीं कर सकते; और यह किसी भी समय उनके उपयोग में नहीं लाई जा सकती, क्योंकि इतिहास महान् व्यक्तियों, राज्य और धर्म की महानता, अच्छाइयों और गुणों का वर्णन है... इतिहास के विज्ञान का अनुसरण वास्तव में महान् और महत्त्वपूर्ण लोगों के लिए हैं।'

बरनी यह भी घोषणा करता है कि इतिहासकारों का कार्य न सिर्फ शासक वर्ग के कार्यों और उनके अच्छे कार्यों की प्रशंसा करना है अपितु नीतियों से हटने तथा असफलताओं का तार्किक लेखन तथा उसे जनता को अवगत कराना भी है। इसके अतिरिक्त, इतिहास का लक्ष्य बरनी के द्वारा काफी विस्तृत किया गया जिसमें संतों, कवियों, विद्वानों के द्वारा सांस्कृतिक भूमिका निभाने के वर्णन को शामिल किया गया। बरनी के इतिहास-लेखन शैली ने आने वाले काल के लेखकों को भी प्रभावित किया, उनमें से कइयों ने उसके विचारों को अपनाने की भी कोशिश की।

10.2.3 परवर्ती चौदहवीं शताब्दी का इतिहास

चौदहवीं शताब्दी के दूसरे खंड में इतिहास का मुख्य कार्य अज्ञात लेखक का *सिरत-इ फिरूजशाही*, और *फुतुहल-इ फिरूजशाही* है, जिसे स्वयं सुल्तान फिरूज तुगलक ने संग्रहित किया है और सिरफ अफीक का *तारीख*-इ *फिरूजशाही* है। *सिरत*-इ *फिरूजशाही* की अलभ्य प्रति पटना के खुदा बख़्श पुस्तकालय में उपलब्ध है, जिसके लेखक का नाम पता नहीं है। यह फिरूजशाह के सरकारी इतिहास को ई. 1370-71 तक बयान करता है। इसमें शामिल है, सैन्य और सुल्तान फिरूजशाह के द्वारा शिकार अभियान के अतिरिक्त धार्मिक संप्रदायों के बारे में रुचिकर जानकारी, सूफी, उलेमा, सामाजिक-नैतिक मामले, विज्ञान और तकनीकी जैसे-खगोल विज्ञान, औषधि विज्ञान आदि। यह वास्तव में कई कार्यकलापों का, उपलब्धि का और सुल्तान के द्वारा प्रदान की गई जनता के उपयोग के कार्य का संग्रह है। नहर का निर्माण और जल संरक्षण, किलों के साथ नए शहरों की नींव और प्राचीन इमारतों के मरम्मत आदि की जानकारी विस्तार से दी गई है।

फुतुहत-इ फिरूजशाही मूल रूप में अभिलेख था जो फिरूजशाह की राजधानी के ज़ामा मस्जिद के दीवार पर लगाई गई थी। बाद में, इसे दूसरी प्रति में ढालकर एक पुस्तक रूप में संरक्षित किया गया। इसके द्वारा सुल्तान आम जनता तक सुधारों और परियोजनाओं को पहुँचाना चाहता था जिसे उसने जनकल्याण के लिए शुरू किया था।

उस काल के दूसरे इतिहासकार शम्स सिराज अफीफ, लगता है कि फिरूजशाह के अंतिम शासन के कालों में सुल्तान के साथ काम किए थे। वह हमें बताता है कि उसके दादा, मलिक शिहाब अफीफ एक राजस्व अधिकारी के रूप में दियालपुर राज्य में गाजी मलिक के अधीन अलाउद्दीन खिलजी के शासन में काम किए थे। उसके पिता और चाचा ने फिरूजशाह के कारखाने का प्रबंधन और देखरेख किया था। जैसे ही अव्यवस्था और अराजकता फिरूजशाह के मृत्यु (1388 ई.) के बाद फैली। वह लगता है कि सेवा-निवृत्त हो गया और अपने-आप को सल्तनत के इतिहास-लेखन में लगा दिया सुल्तान गियासुद्दीन तुगलक शाह (1320-1324ई.) के शासन से लेकर। वह अपने कार्य के कई खंडों का उल्लेख करता है, प्रत्येक खंड अलग-अलग सुल्तानों के लिए समर्पित हैं। उनमें से केवल एक खंड काल के विनाश से सुरक्षित रहा जो फिरूजशाह के शासन को समर्पित है। ऐसा लगता है कि इसे 1398 में तैमूर के द्वारा दिल्ली लुटने के बाद पूरा किया गया है। उसका कार्य पुराने दिनों के ख्याल से भरा है और फिरूजशाह को एक संत शासक के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसकी उपस्थिति ने दिल्ली को कई आपदाओं से हमेशा बचाया। इसी कारण से, उसने इस भाग को *मुनाकिब* (गुणों का संग्रह) के रूप में लिखा है जैसे कि किसी संत की आध्यात्मिक जीवनी हो। *तारीख-इ फिरूजशाही* नाम इसे इसके पाठ के संपादक ने दिया है।

पुस्तक को पाँच किज्म (भागों) में बाँटा गया है, प्रत्येक में असमान लंबाई के अठारह मुकदिमा (अध्याय) हैं। प्रकाशित पाठ का अंतिम (पाँचवाँ) किज्म समाप्त होता है पंद्रहवें अध्याय के साथ। अंतिम तीन अध्याय लगता है कि मुगल शासकों के द्वारा नष्ट किया गया है। संभवत: क्योंकि उनमें तैमूर के द्वारा दिल्ली के लूटे जाने के बारे में सजीव वर्णन था जो बाबर का पूर्वज था। अफीफ का यह भाग महत्त्वपूर्ण है फिरूजशाह के द्वारा सामाजिक-आर्थिक जीवन और समृद्धि, जो उसके शासन से हासिल हुई, की सूचना के लिए। इसमें नए शहरी केंद्रों के स्थापना का विवरण, नहरों का निर्माण, जल-संरक्षण, और प्रशासनिक सुधार आदि अमूल्य हैं। समान रूप से उसके द्वारा किए जाने वाले कृषि सुधार का उल्लेख फिरोजशाह के राजस्व मामलों में रुचि पर प्रकाश डालता है। यह भी कहा जा सकता है कि अफीफ उसके प्रशासन में जो भ्रष्टाचार और दुर्व्यवहार फैला था उसका उल्लेख करने से भी नहीं चूका; और कहता है कि प्रत्येक मंत्रालय में अधिकारी भ्रष्ट हो चुके थे। *दीवान-ई-अर्ज* (सैन्य विभाग) में अधिकारी प्रत्येक घोड़े का एक टंका वार्षिक भर्ती के समय लेते थे। वह केंद्रीय सेना के विकृत होने के बारे में भी हमें सूचना प्रदान करता है जो लड़ाई के क्षेत्र में बेहतर लड़ाकू सेना के रूप में जानी जाती थी तथा जिसने सफलतापूर्वक मंगोल आक्रमणकारियों से मोर्चा लिया था। संपूर्ण रूप में यह एक महत्त्वपूर्ण सूचना का स्रोत है चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दिल्ली सल्तनत के जीवन और संस्कृति के बारे में।

दिल्ली सल्तनत के भंग होने के बाद, बहुत सारे क्षेत्रीय सल्तनत और मुखिया बढ़े। इन क्षेत्रीय सल्तनतों की राजधानियाँ दिल्ली के मुख्य संस्कृति और शिक्षण केंद्र से हटकर अलग हो गईं। दिल्ली, एक नगर के रूप में आकार में छोटा हो गया, और ख़िज्र खान (सईद) के द्वारा अधिग्रहीत कर ली गई, जो नए वंश का स्थापक था। ख़िज्र खान (1414 ई. से 1421 ई. तक शासन) और उसका पुत्र और उत्तराधिकारी, सुल्तान मुबारकशाह (1421-1434 ई.) ने दिल्ली सल्तनत की सत्ता पुनर्जीवित करने की कोशिश की किंतु सफल न हो सका। बाद में उसकी हत्या उसके ही सामन्त लोगों ने कर दी। उसके एक अधिकारी याह्या बिन अहमद सरहिंदी ने सल्तनत के इतिहास को संग्रहित किया और इसका शीर्षक सुल्तान के नाम पर *तारीख-इ मुबारकशाही* रखा लगता है कि संग्रहकर्ता ने सूचना भारत में लिखे कई इतिहासों से अलग-अलग समय में ग्रहण की है। थोड़ी कुछ सूचना याह्या के द्वारा उपयोग में लाई गई जो अब भी उपलब्ध है किंतु उनमें से कुछ *तारीख-इ मुबारकशाही* से सम्मिलित और संग्रहित करके बची हैं। यह इसके महत्त्व को बढ़ाता है। अकबर के शासन के इतिहासकार ने तारीख का उपयोग किया अपने भाग को तैयार करने में जो दिल्ली सल्तनत के इतिहास को समर्पित है।

10.2.4 पंद्रहवीं शताब्दी का इतिहास

पंद्रहवीं शताब्दी में व्यक्तिगत राज्यों के बारे में कई ऐतिहासिक लेखन हुए जिसे क्षेत्रीय शासकों को समर्पित किया गया। शिहाब-हाकीम ने मालवा के इतिहास को संग्रहित किया और सुल्तान मुहम्मद खिलजी के नाम से *मासिर-इ महमूदशाह* नाम दिया। अब्दुल हुसैन तुनी, ईरान के प्रवासी विद्वान् जो अहमदाबाद (गुजरात) में बसे, *मासिर-इ महमूद शाही* लिखा सुल्तान महमूद शाह बेगरा के शासन में। दोनों ही कार्य उपलब्ध हैं। दूसरा उल्लेखनीय इतिहास है *तारीख-इ मुहम्मदी*, जिसे मुहम्मद बिहमद खानी के द्वारा संग्रहित किया गया है, जो काल्पी के निवासी थे। अरबिया में इस्लाम के शुरू होते हुए यह तबाकत रूप में लिखा गया है। यह *तबाकत-इ नसीरी*, बरनी का *तारीख-इ फिरूजशाही* और दूसरे कार्य जो फिरूजशाह के इतिहास को पूरा करते हैं और उनके उत्तराधिकारियों के भी का सारांश है। किंतु उनका लेखन मूलतः सुल्तान के अच्छी देखरेख में काल्पी के संस्कृति और शिक्षा के केंद्र के रूप में विकसित होने पर है। वह बताता है कि 1398 ई. में तैमूर के वापस जाने के बाद किन परिस्थितियों में महमूद खान तुर्क ने काल्पी राज्य की स्थापना की और उसने सुल्तान की पदवी धारण की। काल्पी जौनपुर और माल्वा के सुल्तानों के बीच संबंधों के प्रकृति की सूचना ऐतिहासिक दृष्टि से रुचिकर है।

10.3 मुगल काल में इतिहास-लेखन

मुगलकाल का मुख्य आकर्षक बिंदु सरकारी इतिहासकारों द्वारा इतिहास-लेखन की परंपरा है जिन्हें औरंगजेब के शासन काल तक सभी मुगलशासकों ने नियुक्त किया था। ये इतिहासकार शासकों के द्वारा नियुक्त किए गए थे और सभी सरकारी रिकॉर्ड उनके उद्देश्य के लिए दिए गए थे। दूसरा मुख्य बिंदु उस काल के शासकों द्वारा आत्मकथात्मक लेखन है। बाबर के द्वारा *तुजुक-इ बाबरी* (तुर्की में फारसी में नहीं) और जहाँगीर के द्वारा *तुजुक-इ जहाँगीरी* (फारसी में) इस कला के महत्त्वपूर्ण कार्य हैं। सरकारी कार्य से अलग, जिसमें मुख्य बाधा थी, कुछ स्वतंत्र कार्य स्वतंत्र विद्वानों द्वारा लिखी गई थीं जो उस काल की नीतियों और घटनाओं की तार्किक मूल्य-निर्धारण करती थीं। इस खंड में हमने व्यक्तिगत शासकों के शासन में हुए इतिहास-लेखन की चर्चा की है।

10.3.1 प्रारंभिक लेखन

जहीरूद्दीन मुहम्मद बाबर, जिसने भारत पर आक्रमण किया और 1526 ई. में लोधी वंश को हराकर मुगल वंश की नींव रखी, एक लेखक भी था। उसने अपनी मातृ भाषा तुर्की और फारसी दोनों भाषाओं में लिखा। उसकी जीवनी *तुजुक-इ बाबरी*, तुर्की में लिखी गई उत्कृष्ट साहित्यिक कृति है, जिसमें शामिल है मध्य एशिया में तैमूर सत्ता के उतार और चढ़ाव का इतिहास, उसकी अपनी जीवनी, भारत में जीवन और संस्कृति का विवरण और घटनाओं की दैनन्दिनी जो उसने पूर्वी भारत में अपने विरोधियों के विरुद्ध चढ़ाई-अभियान का नेतृत्व किया था। बाबर का मध्य एशिया और खुरासन लेखा वस्तुनिष्ठता युक्त है। लेकिन, भारतीय शासकों के बारे में उसका विवरण वस्तुपरकता से रहित है। यह संभव है क्योंकि शत्रुता की वजह से उनके विरुद्ध वह युद्ध करता था। बाबर ने क्रोध में भारतीय शासक अभिजात्यों के बारे में लिखा है। वह भारतीय कुलीनों को अविश्वसनीय कहता था, यद्यपि उसने स्वयं उनको धोखा दिया था। अफगानों ने उसे अपने सुल्तान के विरुद्ध संघर्ष में सहायता के लिए आमंत्रित किया था, इब्राहिम लोधी समझता था कि दौलत लेकर यह वापस चला जाएगा। बाबर भारत के संसाधनों की खूब प्रशंसा करता था और गाँवों तथा नगरों में शिल्पियों और कलाकारों की मौजूदगी से भी प्रभावित था। किसी भी कार्य या रोज़गार के लिए, वह कहता है, 'हमेशा एक वर्ग उपलब्ध है, जिसके लिए वही रोज़गार और व्यापार पिता से पुत्र को सदियों से मिल जाता है'। बाबर वार्षिक राजस्व संग्रह के साथ सरकारों (क्षेत्रीय इकाइयों) की फिहरिस्त का उल्लेख करता है। आगे, नगरों और शहरों का उनके प्रकार के साथ वर्णन रुचिकर है। उसके जीवनी में भौगोलिक वर्णन इसके महत्व को बढ़ाता है। इसके अतिरिक्त, *तुजुक-इ बाबरी* न सिर्फ एक राजनीतिक कथा

है बल्कि प्रकृतिवादियों की एक पत्रिका मानी जाती है। उसका जीव-जन्तुओं तथा वनस्पतियों का वर्णन जहाँ वह गया था ग्राफीय और अंतर्दृष्टिपूर्ण है।

बाबर का पुत्र और उसका उत्तराधिकारी, हुमायूँ (1530-1555 ई.) भी इतिहास में रुचि रखता था। उसने प्रसिद्ध विद्वान् खवाण्डमीर को अपने राज्य का इतिहास लिखने के लिए नियुक्त किया। शाही आदेश का पालन करते हुए खवाण्डमीर ने उसके राज्य का संक्षिप्त इतिहास लिखा जो उसके सिंहासनारूढ़ होने से लेकर 1535 ई. तक था तथा उसका नाम दिया *कानून-इ हुमायूँनी*। यह हुमायूँ के राज्य-नीति पर प्रकाश डालता है, विशेष रूप से भारतीय कुलीनों और ज़मींदार अभिजात्य वर्ग के संबंध में। वह हुमायूँ द्वारा भारतीय सामन्तों को अपनी ओर जीतकर लाने के प्रयास को इंगित करता है।

10.3.2 अकबर का राज्य : सरकारी इतिहास

अकबर (1556-1605 ई.) के सिंहासन पर आरूढ़ होने के साथ, इतिहास-लेखन की संकल्पना और इतिहास लेखकों के वर्ग में महत्त्वपूर्ण बदलाव आया। चूँकि वंश का इतिहास वंश के लिए यादगार के रूप में काम आने लगा, अकबर ने पहले सहस्राब्दी के पूर्ण होने पर पैगम्बर मुहम्मद से लेकर अपने समय तक के इस्लाम के मुस्लिम शासकों के इतिहास को लिखने के लिए प्रस्तावित किया जो कि, एक हजार साल का इतिहास था, उसका नाम दिया *तारीख-इ अल्फी*। बाबर और हुमायूँ के काल और जीवन की सूचना प्रदान करने के लिए, सभी सरकारी कर्मचारी, कुलीन और उनके रिश्तेदारों को अपनी यादों को पुस्तकीय रूप में देने को कहा। अकबर के अनुरोध पर, बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम, बयाजिद बियात (हुमायूँ का एक कर्मचारी) और जौहर अफ्ताबची (हुमायूँ का व्यक्तिगत सहायक) ने उनकी यादों को पुस्तकीय रूप में दिया। गुलबदन की यादें *हुमायूँनामा* शीर्षक से एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है जैसा कि यह शाही हरम के जीवन और संस्कृति पर प्रकाश डालता है। यह अनोखा माना जाता है क्योंकि यह उस काल की घटनाओं को एक महिला के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से लिखा गया है। हुमायूँ के मृत्यु के बाद, बयाजीत बियात ने मुनीम खान खानीखानन के अधीन जौनपुर और बंगाल में कार्य किया और जिसे सम्राट अकबर द्वारा शासक पर निगाह रखने का आदेश था और सारे विकासक्रम की गोपनीय सूचना देने को कहा गया था। उसने हुमायूँ के जीवन की घटनाओं को ईरान, काबूल और बाद में भारत में वर्णित किया। अधिकांश को उसने स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव किया था। उसका कार्य *तजकीरात-इ हुमायूँ वा अकबर* शीर्षक से है। जौहर हफ्ताबची जिसने हुमायूँ की सेवा की थी ने भी हुमायूँ के जीवन और उसके काल के बारे में अपने *तज़कीरात-उल वकियात* में उपयोगी सूचनाएँ दी हैं। बयाजीद बियात और गुलबदन बेगम के यादों के संग्रह की तरह, उनका काम भी सतही तथा ऐतिहासिक तथ्य में अंतर नहीं करती। फिर भी, *तारीख-इ अल्फी* के संग्रहकर्ता के लिए और अकबर के शासन के इतिहास के बारे में, अबुल फजल के अकबरनामा समेत ये सारे कार्य सूचना के स्रोत के रूप में काम में आए।

अकबर ने सात विद्वानों का एक परिषद् गठित किया *तारीख-इ अल्फी* के संग्रह के लिए। परिषद् के प्रत्येक सदस्य को कालक्रम में एक काल के इतिहास को लिखने के लिए कहा गया। प्रत्येक घटना को वर्ष-वार में वर्णित करने के लिए इस योजना में कहा गया है। फिर भी, कुछ भारतीय शासकों का लेखन अलग करके अलग खंडों में संग्रहित किया गया है। यह तरीका मुहम्मद बिन तुगलक, लोधी, पंद्रहवीं शताब्दी के क्षेत्रीय राज्य, शेरशाह, इस्लाम शाह और आदिलशाह सूर के इतिहास को प्रदान करने के लिए अपनाया गया है। इसका समापन भाग 1585 ई. तक अकबर के शासन को समर्पित है। *तारीख-इ अल्फी* में अपने शासन के बारे में लेखन से संतुष्ट न होकर, 1589-1590 ई. में, अकबर ने अबुल फजल को बाबर और हुमायूँ से शुरू करके अपने शासन के बारे लिखने को कहा। एक विभाग की स्थापना हुई जिसमें दस लोगों को लगाकर अबुल फजल की सहायता की गई। सारी अभिलेख सामग्री संग्रहकर्ता की व्यवस्था के प्रस्तुत की गई। अबुल फजल को इस कार्य के लिए शायद इसलिए चयनित किया गया हो क्योंकि उसने अकबर के विचार और धार्मिक झुकाव के साथ पहचान

बनाई हो। वह अकबर को एक ईश्वरीय व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है, ईश्वर के द्वारा विश्वसनीय बाह्य और आंतरीय अर्थों के बीच झूलते हुए, सामान्य और गुह्य। उसका उद्देश्य लोगों को तकलीद (परंपरा) से छुटकारा दिलाना था, सत्य की ओर ले जाकर समन्वय का वातावरण तैयार करना था, जिससे अनेक पंथों में विश्वास करने वाले लोग शांति और सद्भावना से रह सकें। वह ईश्वर की ओर से आ रहे प्रकाश के रूप में प्रदर्शित किया गया।

चापलूसी के बावजूद, अबुल फजल अकबर के इतिहास को लिखने में कामयाब रहे जो कि भारतीय-फारसी इतिहास-लेखन में महत्त्वपूर्ण योगदान माना जाता है। यह पाँच बार संशोधन के बाद पूर्ण हुआ जिसमें सात साल का कठोर परिश्रम लगा था, कार्य का समापन वास्तव में युगान्तरकारी था। अबुल फजल इसमें विश्वास नहीं करते थे कि भारतीय इतिहास सिर्फ मुस्लिम शासकों की उपलब्धियों से ही संबंध रखे, न ही उन्होंने इस्लाम के अतीत से संबंध स्थापित करने की कोशिश की। अकबर के द्वारा राजपूतों के विरुद्ध सैन्य अभियान के लेखन में, वह बल देते हैं कि किसी हिन्दू या मुस्लिम सेनापति के पास इसका कोई औचित्य नहीं था कि वह शासकीय संगठनों में भाग न लें क्योंकि अकबर की नीति समझौतावादी थी। वह मानते थे कि अकबर की राज्य नीति देश में एकता, स्थिरता, और आर्थिक समृद्धि लाएगी। दरअसल, अबुल फजल की इतिहास की धर्मनिरपेक्ष समझ आगे की आने वाली शताब्दियों के लिए आधार तैयार कर सकी।

अकबरनामा और *आइन-ए-अकबरी* दोनों 1602 ई. तक अकबर के द्वारा चलाए जा रहे नीतियों और घटनाओं की विस्तृत जानकारी प्रदान करती हैं। फिर भी, अबुल फजल ऐसा कोई मामला या उद्धरण नहीं रखना चाहते जिससे अकबर पर कीचड़ उछले। यह सत्य है कि *आइन-ए-अकबरी* आर्थिक वर्णनों से भरा है, किंतु ये वर्णन सामान्य लोगों के जीवन और स्थिति, विशेषकर किसानों और कामगार लोगों के बारे में कुछ भी नहीं बतातीं। *आइन-ए-अकबरी* में सांख्यिकीय आँकड़े अधिक हैं जो आर्थिक इतिहास के लिए महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं जो इसके पहले के किसी ऐतिहासिक लेखन में और 18वीं शताब्दी तक नहीं हैं। किंतु शिल्पकार और किसान पूरी तरह अनुपस्थिति में हैं। *आइन-ए-अकबरी*, *अकबरनामा* का तीसरा भाग, अपने आप में अनूठा संकलन है प्रशासन पद्धति और सरकारी विभागों के नियंत्रण के तंत्र के बारे में जानकारी के लिए। इसमें हिंदुओं के धार्मिक और दार्शनिक पद्धतियों पर भी लेखन है। फिर भी, अबुल फजल का अकबर के विचार और धार्मिक विश्वास से सामंजस्य ने उन्हें एक चित्र को विभिन्न रंगों में प्रस्तुत करने से रोक दिया। अबुल फजल शाह मंसूर या उनके उत्तराधिकारी टोडरमल के योगदान का उल्लेख नहीं करते हैं। राजस्व सुधारों के बारे में लिखते हुए और अकबर को एक प्रतिभावान के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिसने मूल सुधार विकसित किया आइन-ए दशाला समेत (दस साल का बंदोबस्त) और राजस्व दस्तूर के माध्यम से। पाठक *अकबरनामा* में अकबर के काल की आत्मा को नहीं पाते हैं जिसे अब्दुल कादिर बदाऊँनी या यहाँ तक कि निजामुद्दीन अहमद ने प्रस्तुत किया है।

10.3.3 अकबर का राज्य : ग़ैर-सरकारी इतिहास

निजामुद्दीन अहमद और अब्दुल बदाऊँनी इस काल के दो महत्त्वपूर्ण इतिहासकार हैं। इतिहास विषय की प्रसिद्धि से प्रेरित होकर, दोनों ही विद्वानों ने भारत में मुस्लिम शासन के इतिहास को लिखा है और दूसरे क्षेत्रों में हुए विद्वान व्यक्तियों के उपलब्धियों को भी रिकॉर्ड किया है।

निजामुद्दीन ख़्वाजा मुकीम हार्वी के पुत्र थे, जो बाबर और हुमायूँ के युग के सामन्त। वह एक काफी पढ़े लिखे व्यक्ति थे और साहित्य और इतिहास में रुचि रखते थे। जब उन्होंने तीन भागों में भारत के इतिहास को लिखने की परियोजना अपने हाथ में ली, उन्होंने मसूम भक्कारी जैसे लोगों को अपने सहयोग में शासन के विभिन्न क्षेत्रों की सूचना प्रदान करने के लिए लगाया।

एक व्यक्ति जो राज्यों और राजदरबार में महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य करके सरकारी महकमों में अनुभव प्राप्त किया हो, वह अपने विद्वतापूर्ण काम से महत्त्वपूर्ण योगदान करने में समर्थ थे। उसका

प्रथम भाग भारत में मुस्लिम शासकों के इतिहास के बारे में 1526 ई. में लोधी वंश के पतन तक संबंध रखता है। दूसरा भाग भारत में मुगल शासकों के 1593 ई. तक के शासन को शामिल करता है। तीसरा भाग भारत के क्षेत्रीय राजाओं के उत्थान और पतन को वर्णित करता है। यह निजामुद्दीन अहमद को श्रेय जाता है कि उन्होंने अकबर के शासन के सभी घटनाओं का उल्लेख किया है यहाँ तक कि विवादास्पद *मज़हर* का जिसे अबुल फजल ने नज़रअन्दाज कर दिया था। फिर भी, शासन का एक मीरबक्षी (सैन्य विभाग का प्रभागी) होकर, यह कोई तार्किक मूल्यांकन नहीं करता। तथापि, यह अबुल फज़ल के द्वारा छोड़ी गई दूरी को भरने में मदद करता है न सिर्फ इस मामले में बल्कि कई दूसरे मामलों में भी। उसका कार्य *तबाकत-इ अकबरी* बाद के लेखकों द्वारा प्रामाणिक कार्य मानी गई और उन्होंने इससे उद्धरण भी लिया।

अब्दुल कादिर बदाऊँनी भी साहित्य और इतिहास के इच्छुक विद्यार्थी थे। वह कहते हैं कि अपने विद्यार्थी जीवन से ही, वह घंटों इतिहास पढ़ने या लिखने में लगाते थे। उन्होंने इस्लामी अध्यात्म विज्ञान के साथ संस्कृत और भारतीय संगीत भी सीखा। अकबर ने उन्हें महाभारत को संस्कृत से फारसी में अनुवाद करने के लिए लगाया। उनके इतिहास का पहला भाग *मुन्ताखबुत तवारीख* शीर्षक से दिल्ली के सल्तनत के इतिहास से संबंधित है। दूसरा भाग अकबर के शासन की व्याख्या करता है जबकि तीसरे भाग में विद्वानों, कवियों और सूफी संतों के जीवनी पर लेख पाते हैं। उनका लेखन बहुत ही पठनीय है जो उस काल के महत्त्वपूर्ण तथ्यों को सामने लाता है। संक्षिप्तता बदाऊँनी की शैली की सुंदरता है। पहले भाग में सूचना विविध स्रोतों से ली गई है, जिसमें से बहुत सारे आज उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी, बदाऊँनी विश्लेषणात्मक स्वतंत्र मस्तिष्क से विविध विचार रखता है, सरकारी विचार से अलग। वास्तव में बदाऊँनी का उद्देश्य अपने समय का स्पष्ट लेखन प्रस्तुत करना था। यह बदाऊँनी के इतिहास का दूसरा भाग है जिसे अबुल फज़ल के अकबरनामा के साथ पढ़ा जाना चाहिए अकबर के शासन की सही जानकारी प्राप्त करने के लिए। बदाऊँनी के इतिहास की पुष्टि निजामुद्दीन अहमद की बातों से भी होती है। अबुल फज़ल के विपरीत और यहाँ तक कि निज़ामुद्दीन अहमद के भी विपरीत, अकबर के इबादत खाना में हुए धार्मिक बहस के बारे में बदाऊँनी का लेखन, मुस्लिम रूढ़िवादियों से अकबर के मतभेद का मूल जिसने धार्मिक विवाद को गहराया, समकालीन विचार को प्रमुखता के साथ उद्घाटित करता है। *अकबरनामा* की तुलना में यह कई क्षेत्रों में ज़्यादा विश्वसनीय है, विशेष रूप से विवादित मामलों पर। यह पाठकों पर प्रभाव छोड़ता है कि यह सरकारी बाधाओं से मुक्त है, उस काल की वास्तविकता को पकड़ता है और उस काल के महत्त्व तथा संघर्ष की तीव्रता को भी उजागर करता है।

10.3.4 जहाँगीर के राज में इतिहास

अकबर का पुत्र और उत्तराधिकारी जहाँगीर ने जीवनीपरक इतिहास लिखने का निश्चय किया अपने स्वयं के शासन का जिस परंपरा को बाबर ने शुरू किया था। इसके बावजूद, उसने दूसरे विद्वानों को भी अपने शासन का इतिहास लिखने के लिए सौंपा। उसने शेख अब्दुल हक को उनके इतिहास में अपने शासन का भी लेखन जोड़ने को कहा। किंतु वह बहुत वृद्ध था इस काम को लेने में, फिर भी उसका पुत्र काज़ी नुरुल हक ने *जुब्दतुत तवारिख* इतिहास को संग्रहित किया और इसे जहाँगीर के शासन के लेखन से खत्म किया। उसके पिता के द्वारा संकलित की गई तारीख की तरह, शेख अब्दुल हक का *जुब्दतुत तवारीख* भी भारत के मुस्लिम शासकों के इतिहास को वर्णित करती है। दूसरे लेखक जिन्होंने वृहद् इतिहास अफगान कबीलों और अफगान शासकों पर संकलित किया, लोधी और सूर वंशों को भी जहाँगीर के शासन के प्रारंभिक दस वर्षों में एक अध्याय में शामिल किया है। यह *तारीख-इ खान-इ जहानी* जहाँगीर के सामन्त खानी जिसे लोधी के संरक्षण में नेमत अल्लाह हरबी ने संकलित किया है। जहाँगीर के स्वयं की यादें *तुजुक-इ जहाँगीरी* में हैं, जो उसके शासन के इतिहास का प्रमुख स्रोत है।

शासक ने तुजुक को स्वयं लिखा अपने शासन के 17वीं साल तक जब तक उसके स्वास्थ्य ने साथ दिया। बाद में, उसने इसे अपने विश्वस्त अधिकारी, मुतामद खान से बोलकर लिखवाया। यह बहुत

हद तक जहाँगीर के शासन की अच्छी तस्वीर पेश करती है। मुख्य घटनाएँ विद्रोहों से जुड़ी हैं, शासकीय अधिकारियों की भूमिका, उनकी प्रोन्नति और दण्ड और साथ ही साथ भारत की अन्य विदेशी सत्ताओं के साथ कूटनीतिक संबंध को प्रांजल शैली में वर्णित किया गया है। यह वर्ष प्रति वर्ष कथा वर्णित करती है। आगे, हम पाते हैं, मुगल शासन की संस्कृति पर दृष्टि और साथ ही साथ जहाँगीर का सौंदर्य बोध, शिक्षा और प्रकृति में रुचि आदि।

10.3.5 शाहजहाँ के राज में इतिहास

मुतामद खान ने *इकबालनामा-इ जहाँगीरी* से शाहजहाँ के सिंहासन पर आरूढ़ होने के बाद इतिहास लिखना प्रारंभ किया। उसका उद्देश्य शाहजहाँ का अपने पिता का विरोध सही साबित करना था क्योंकि नूरजहाँ बेगम उसे क्षति पहुँचाना चाहती थीं और शहरयार के सिंहासनारूढ़ होने का रास्ता साफ करना चाहती थीं। यह तीन भागों में बँटा है : पहला भाग बाबर और हुमायूँ के इतिहास का लेखा प्रस्तुत करता है, दूसरा भाग अकबर के शासन को शामिल करता है जबकि तीसरा भाग जहाँगीर शासन को समर्पित है। अंतिम भाग में उसके उन्नीस वर्षों के शासन का *तुज़ुक-इ जहाँगीरी* का सिर्फ संक्षेपक है। इसमें जहाँगीर के शासन के अंतिम वर्ष का लगभग आँखों देखा वर्णन है।

मुतामद खान की तरह, ख़्वाजा कामगार हुसैनी भी मुगल राजदरबार से संबंधित परिवार से आए। उन्होंने शाहजहाँ और जहाँगीर दोनों के शासन में कार्य किया। *मासिर-इ जहाँगीरी* के निर्माण में, उन्होंने *तुज़ुक-इ जहाँगीरी* से भी सहायता ली। उनका जहाँगीर के 19 सालों का ऐतिहासिक लेखन मौलिक कार्य है और घटनाओं का महत्त्वपूर्ण स्रोत है जो उसके शासन के अंतिम वर्षों में घटित हुई। उसने अपना कार्य 1630 ई. में संकलित करना शुरू किया। यह भी कहा जा सकता है कि संग्रहकर्ता कुछ घटनाओं की सूचना जो जहाँगीर के सिंहासनारूढ़ होने से पहले घटित हुई थीं, उसे भी जोड़ा। उदाहरण के लिए, राजकुमार खुसरो के समर्थकों द्वारा राजसिंहासन हथियाने के लिए जहाँगीर के अलग-थलग करने की घटना का वह विस्तार से वर्णन करता है। किसी और इतिहासकार ने इस घटना के बारे में सूचना नहीं दी है। वह जहाँगीर को प्रकृतिवादी के रूप में चित्रित करता है, जहाँगीर का जीव-जंतुओं, वनस्पतियों में रुचि का वह वर्णन करता है, और जन्तु जनन आदि के बारे में भी। संक्षेप में, *मासिर-इ जहाँगीरी* जहाँगीर के शासन का एक प्रमुख इतिहास है।

अब्दुल फज़ल की गद्य लेखन की शैली से और *अकबरनामा* के विस्तार से प्रभावित होकर, शाहजहाँ ने भी इच्छा व्यक्त की कि उसके शासन का इतिहास फारसी गद्य के किसी विशेषज्ञ से लिखाया जाए। पहले उसने मोहम्मद अमीन काजवीनी से कोशिश की और *बादशाहनामा* लिखने के लिए सलाह दी जिसका मतलब कि उसके शासन का इतिहास अबुल फज़ल के *अकबरनामा* के आधार पर लिखा जाए। अबुल फज़ल की तरह, अमीन काजवीनी को भी सहायक प्रदान किए गए थे और शाही पुस्तकालय की सुविधाएँ लेने की पूरी अनुमति थी और राज्य अभिलेखों की सामग्री संग्रह के लिए भी। नौ वर्षों में काजवीनी पहला भाग पूर्ण कर सके जिसमें शाहजहाँ के शासन के पहले दस वर्षों का लेखा भी था। ऐसा लगता है कि वह प्रत्येक दशक का एक अलग भाग संकलित करना चाहता था किंतु उसे परियोजना पर कार्य करने से रोक दिया गया। यद्यपि विस्तार में प्रत्येक भाग समृद्ध था, उसकी शैली बादशाह के द्वारा नहीं पसंद की गई। मोहम्मद सलेह कम्बोह के अनुसार, *अमल-इ सलेह* (या *शाहजहाँनामा*) का लेखक, काजवीनी को गुप्तचर विभाग में स्थानांतरित कर दिया गया। अब्दुल हमीद लाहौरी को उसके स्थान पर सरकारी इतिहासकार नियुक्त किया गया। अब्दुल हमीद को अबुल फज़ल की बराबरी की फारसी शैली में लिखने में दक्ष पाया गया। सलेह कम्बोह बताते हैं कि अब्दुल हमीद को उनकी शैली की सुंदरता के लिए प्रसिद्धि मिली। *अकबरनामा* की तरह, *बादशाहनामा* भी आलंकारिक अस्वाभाविकता से भरपूर है।

अब्दुल हमीद का *बादशाहनामा* शाहजहाँ के शासन के बीस वर्षों के इतिहास को सँजोए हुए है। यह दो भागों में भरा है, प्रत्येक में दस वर्षों का शासन है। घटनाएँ क्रमबद्धीय तरीके से वर्ष वार दी

गई है। इसमें राजकुमारों पर अलग खण्ड भी है, राजकुमारियों और सामन्तों पर भी खण्ड है। सामन्तों को परवर्ती अवरोही क्रम में अपने मनसब 9000 से 500 घोड़ों के हिसाब से सूचीबद्ध किया गया हैं। अंत में लेखक एक खंड को प्रमुख सूफी संतों, वैद्यों और शाहजहाँ के शासन के कवियों को समर्पित करता है।

वृद्धावस्था के कारण, अब्दुल हमीद लाहोरी सेवामुक्त हो गए और उनका शिष्य मोहम्मद वारिस ने शासक का आदेश पाकर कार्य को आगे बढ़ाया। वारिस के खण्ड दस वर्षों के शासन के लेखन हैं शुरूआत से बीसवें साल तक, फिर तीसवें साल तक जब शाहजहाँ को गद्दी छोड़नी थी। वारिस का *बादशाहनामा* उसके शिक्षक के *बादशाहनामा* से मिलता जुलता है तथा शैली और वर्णन दोनों में समानता है।

दो अन्य लेखकों ने औरंगजेब के प्रारंभिक शासन के दौरान शाहजहाँ के शासन के इतिहास को लिखा वे थे सादिक खान और मोहम्मद सलेह कम्बोह। पहले का काम *बादशाहनामा* से जाना जाता है। जबकि परवर्ती इतिहास *अमल-इ सलेह* (या *शाहजहाँनामा*) नाम से प्रसिद्ध है। ये दोनों कार्य शाहजहाँ के पुत्रों के बीच उत्तराधिकार से जुड़े युद्धों और शाहजहाँ के अंतिम वर्षों के जीवन को बखूबी बयान करते हैं।

10.3.6 औरंगजेब के राज में इतिहास

बादशाह औरंगजेब ने भी अकबर और शाहजहाँ के परंपरा का पालन किया। उसने मोहम्मद काजिम पुत्र मुहम्मद अमीन कजीवीनी को अपने शासन का इतिहास लिखने के लिए नियुक्त किया। शाही आँकड़ों के प्रभारी अधिकारी को यह आदेश दिया गया कि सरकारी इतिहासकारों को बुलाकर उन सारे पत्रों को इकट्ठा किया जाए जो महत्त्वपूर्ण घटनाओं को लेकर समाचारपत्रों तथा अन्य उच्च पदस्थों से प्राप्त हुए हैं। शासन के पहले दस वर्षों का लेखन संपूर्ण होने पर इसका लेखन रोक दिया गया। *आलमगीरनामा* (1568 ई.) नाम से खंड लिखा गया। यह खंड गद्य में प्रशस्तिपरक है, इसमें बादशाह को ईश्वर का विशिष्ट दैवी कृपा पात्र प्रस्तुत किया गया है और वह अलौकिक शक्तियों से भरपूर है। चापलूसी और अतिशयोक्ति से तंग आकर, औरंगजेब ने इस इतिहास-लेखन पर प्रतिबंध लगा दिया। राज्य के खर्चों में कमी इतिहास-लेखन को रोकने का दूसरा कारण था।

बाद में, इनायतुल्ला खान कश्मीरी, जो औरंगजेब के पुत्र और उत्तराधिकारी बहादुरशाह के विश्वस्त सामन्त थे, ने साकी मुस्तैद खान को औरंगजेब के शासन का इतिहास संकलित करने का जिम्मा सौंपा। अतः *मासिर-इ आलमगीरी* का संकलन 1711 ई. में पूर्ण हुआ। यह औरंगजेब के शासन के सरकारी इतिहास की वृहद् कार्य की पूर्ति करती है।

अबुल फज़ल के *अकबरनामा* और अदुल हमीद लाहौरी के *बादशाहनामा* की तरह, *मासिर-इ आलमगीरी* को इतिहास के रूप में संकलित किया गया है, प्रत्येक वर्ष को अलग से चिह्नित किया गया है। इसकी शैली साहित्यिक दंभ से मुक्त है, किंतु कार्य सरकारी पदों की शुष्क सूची की तरह लगता है जैसे प्रोन्नति, विजय के लिए सैन्य नियुक्ति आदि। फिर भी, ऐसी जगहों पर रुचिकर सूचना मिलती है जहाँ संकलनकर्ता घटनाओं का परीक्षण और उस पर चिंतन करते हैं और विशेष रूप से जीवनीपरक रूपरेखाओं पर। यह उद्धरित किया जा सकता है कि *मासीर-इ आलमगीरी* में औरंगजेब के शासन के पहले दस वर्षों का लेखा काजीम के *आलमगीरनामा* का संक्षिप्त सारांश है किंतु 11वीं शताब्दी के आगे का लेखा उसके व्यक्तिगत अनुभवों और राज्य अभिलेखों पर आधारित है। यह फिर भी, शासन में सामाजिक जीवन और बिगड़ती आर्थिक दशा के वर्णन से लगभग रहित है। यह मुगल शासन का अंतिम सरकारी इतिहास है। उसके बाद, खाफी खान और दूसरे 18वीं शताब्दी के इतिहासकारों ने इतिहास का संकलन किया किंतु उनका दृष्टिकोण भेदकारी था, प्रत्येक इतिहासकार ने राजदरबार के कुछ समूह के निष्ठा के अनुसार, लेखन किया।

इन ऐतिहासिक कार्यों के अलावा कई दूसरे कार्य जैसे *मासीर-उल उमरा,* शाहनवाज खान के द्वारा सामन्तों के जीवनियों का संग्रह, प्रशासन पर प्रबंध जैसे राय छत्तरमल का *दीवान-इ पसंद,* अमामुल्ला हुसैन का कार्य *गंज-इ बदबुर्द* (कृषि पर), मिर्जनाशन का *बहरिस्तान-इ गयबी* कुछ महत्त्वपूर्ण मुगलकालीन इतिहास के कार्य हैं।

10.4 सारांश

मुस्लिम अभिजात्यों में, इतिहास को धार्मिक पांडुलिपि और विधि शास्त्र के बाद तीसरा महत्त्वपूर्ण ज्ञान का स्रोत माना जाता था। इसलिए, इतिहास-लेखन और अध्ययन को 12वीं शताब्दी के अंत में दिल्ली सल्तनत के स्थापना के बाद अधिक महत्त्व मिला था। भारतीय-फारसी परंपरा में मुहम्मद बिन मंसूर को इतिहास-लेखन के क्षेत्र में अग्रणी माना जाता था, जो फकीर-इ मुदाब्बीर नाम से प्रसिद्ध थे। उनके लेखन में पैगंबर मुहम्मद के वंश परंपरा की पुस्तक शामिल थी और मुस्लिम शासकों जैसे कुतुबुद्दीन ऐबक के बारे में भी। मिन्हाज सिराज जुजानी दूसरे महत्त्वपूर्ण 13वीं शताब्दी के इतिहासकार थे। फिर भी, भारतीय फारसी इतिहास-लेखन में जियाउद्दीन बरनी 19वीं शताब्दी के बहुत ही महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे। उनका तारीख-इ-फिरूजशाही मध्ययुगीन इतिहास-लेखन परंपरा की मील की पत्थर थी। यह उनके समय के शासकों की खुशी के लिए लिखा गया था। मुगलों के अधीन इतिहास-लेखन की यह परंपरा आगे बढ़ती रही और नई ऊँचाइयों पर पहुँची। अबुल फज़ल, निजामुद्दीन अहमद, अब्दुल कादिर बदाऊँनी, ख़्वाजा कामगार हुसैनी, और अब्दुल हमीद लाहौरी मुगल काल के कुछ महत्त्वपूर्ण इतिहासकार थे।

10.5 अभ्यास

1) मिन्हाज के इतिहास-लेखन शैली का संक्षेप में परिचय दीजिए।
2) 14वीं शताब्दी में लिखे गए महत्त्वपूर्ण इतिहास की चर्चा कीजिए।
3) जियाउद्दीन बरनी को सल्तनत काल का महत्त्वपूर्ण इतिहासकार क्यों माना जाता है?
4) अकबर के शासन पर अबुल फज़ल और बदाऊँनी के लेखन की तुलना कीजिए।
5) जहाँगीर शासन के दौरान ऐतिहासिक कार्यों की संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

10.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

इक्तिदार हुसैन सिद्दिकी, *'दि ओरिजिन एंड ग्रोथ ऑफ एन इस्लामिक हिस्टोरियोग्राफी इन इंडिया', जर्नल ऑफ ऑब्जेक्टिव स्टडीज़,* वोल्यूम 1, नं. 1-2, जुलाई-अक्टूबर 1989, जामिया नगर, नई दिल्ली।

हसन बरनी, 'जियाउद्दीन बरनी', *इस्लामिक कल्चर,* हैदराबाद, दक्कन, वोल्यूम 12, न 1, जनवरी 1938।

नोर्मन अहमद सिद्दिकी, 'शेख अबुल फज़ल' इन *हिस्टोरियन्स ऑफ मिडीवल इंडिया,* संपादित वाई मोहिबुल हसन, मेरठ, 1968।

के. ए. निजामी, *'हिस्टोरिकल लिट्रेचर ऑफ अकबर्स रेन'* इन *ऑन हिस्ट्री एंड हिस्टोरियन्स ऑफ मिडीवल इंडिया,* मुंशीराम मनोहरलाल, नई दिल्ली, 1983।

इकाई 11 स्थानीय इतिहास

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

इस खंड की पहली तीन इकाइयों में आपने मध्ययुग के एशिया और यूरोप के इतिहास-लेखन के बारे में सीखा। यह इकाई आधुनिक और पूर्व आधुनिक काल के बीच स्थित है। इस इकाई में हमने तीन प्रकार के भिन्न इतिहास-लेखन व्यवहार को "स्थानीय इतिहास" शीर्षक के अंतर्गत वर्णित किया है। ये हैं 'स्थानीय इतिहास', 'मौखिक इतिहास', और 'सूक्ष्म इतिहास'। तीनों ही स्थानीय क्षेत्रों पर केंद्रित हैं, यद्यपि इनके सैद्धांतिक निवेश और प्रभाव आवश्यक रूप से स्थानीय हों, ऐसा नहीं है। इसके अतिरिक्त, इनमें से दो – 'स्थानीय इतिहास' और 'मौखिक इतिहास' – दोनों पूर्व आधुनिक और आधुनिक इतिहास-लेखन की मूल पद्धतियों को प्रयोग में लाती हैं। छोटे स्तर और सामान्य लोगों पर केंद्रित होकर, ये इतिहास पूर्व आधुनिक और आधुनिक काल दोनों के प्रभावी ऐतिहासिक विमर्शों को चुनौती देते हैं।

11.2 स्थानीय इतिहास

स्थानीय इतिहास को आम तौर पर 'ऐतिहासिक लेखन की विशिष्ट धारा जो भौगोलिक रूप से लघु क्षेत्र पर केन्द्रित, अ-व्यवसायिक इतिहासकारों द्वारा, अशैक्षिक श्रोताओं के लिए लगातार लिखा जाने वाला और उन पर केंद्रित इतिहास माना जाता है'। पश्चिमी देशों में, विशेष रूप से ब्रिटेन में, फ्रांस और अमेरिका में, स्थानीय इतिहास 18वीं और 19वीं शताब्दी में स्थानीय अभिजात्यों द्वारा लिखे गए। 19वीं शताब्दी में, इस प्रक्रिया ने जोर पकड़ा और कई संस्थाएँ स्थानीय इतिहास पर काम करने के लिए बनीं। शहरीकरण, औद्योगीकरण और प्रव्रजन (स्थानांतरण) के प्रभाव में स्थानीय समुदाय अस्थिर हो गए और पहचान की समस्या उभरी। इससे स्थानीय पढ़े-लिखे लोगों में एक अभिलाषा उत्पन्न हुई कि वे स्थानीय और क्षेत्रीय स्तर पर अपने इतिहास को अंकित करें। 1860 ई. से आगे, कई इतिहास समूह उभरे जो अपने क्षेत्र के अध्ययन को आगे बढ़ाने के लिए रुचि रखने लगे। उनका कार्य अतीत के कई पक्षों को समाहित करता था – 'अभिलेखीय महत्त्व के अज्ञात स्थानों में स्थानीय चर्चों के इतिहास से लेकर पुरानी कुल्हाड़ी की खोज तक'। वंश परंपरा का अध्ययन और पारिवारिक इतिहास जैसे कुछ दूसरे रुचि के क्षेत्र स्थानीय इतिहास में थे। अमेरिका में 19वीं शताब्दी विशेष रूप से स्थानीय इतिहास का काल था। स्थानीय अभिजात्यों के संरक्षण में जो अपनी सामाजिक स्थिति को बनाए रखने या बढ़ाने में रुचि रखते थे, ये इतिहास विशिष्ट क्षेत्र की स्थापना को अंकित किए, इसमें प्रारंभिक राजनीतिज्ञों की सूची और जीवन स्थानीय प्रमुखों का इतिहास आदि भी अंकित किए गए।

स्थानीय इतिहास एक नौसिखिए प्रयास के रूप में शुरू हुआ स्थानीयता और सामुदायिकता को गौरवान्वित करने के लिए और अभी भी यह प्रवृत्ति मौजूद है। 'स्थानीय इतिहास' के नाम से यह शब्द लगातार पुरातत्ववाद और शौकिया इतिहासलेखन के साथ जुड़ा हुआ है। फिर भी, 1930 ई. से, इस क्षेत्र में कुछ व्यवसायीकरण आया था। आगे के दो दशकों में कई पुस्तकें लिखी गईं जो स्थानीय क्षेत्रों पर केंद्रित थीं और पेशेवर उपलब्धि के क्षेत्र में किसी भी राष्ट्रीय इतिहास के समकक्ष मानी जाती थीं। ए. एच. डॉड का *इंडस्ट्रीज़ रिवोल्यूशन इन नार्थ वेल्स* (1933), डब्ल्यू. एच. चलनर का *द सोशल एंड इकोनोमिक डेवलेपमेन्ट ऑफ क्रयू*, 1780-1923 (1950), डब्ल्यू. जी. हॉस्किन का क्लासिक *द मेकिंग ऑफ दी इंग्लिश लैंड स्केप* (1955) और जे. डी. मार्शल का *फर्नेस एण्ड दी इंडस्ट्रीयल रिवोल्यूशन* (1958) जैसी कुछ किताबें थीं जिन्होंने ब्रिटेन में स्थानीय इतिहास को आंदोलित कर दिया। स्वेडन में जॉर्न हर्सेन का *ओस्टरलेन* (1952) फ्रांस में गी थूलर का कार्य और अमेरिकन मिडवेस्ट पर जोसेफ अमेरो का कार्य ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया और स्थानीय इतिहास को पेशावर बनाने में योगदान दिया।

1947 में ब्रिटेन के लिसेस्टर में स्थानीय इतिहास का पहला विभाग स्थापित करके इस परंपरा को शैक्षिक आकार दिया गया। यहाँ शैक्षिक स्थानीय इतिहास का अभी भी विकसित दृष्टिकोण प्रभावी है जिसे 'लिसेस्टर स्कूल' के नाम से जाना जाता है। एच.पी.आर. फिनबर्ग ने 1952 में अपने 'उद्देश्य कथन' में इस 'स्कूल' के उद्देश्य के बारे में कहा था :

> 'विभाग का प्राथमिक उद्देश्य होगा अपने मस्तिष्क को पोषित करना और उनके मस्तिष्क को जो हमारे निर्देशन की तरफ देखेंगे, स्थानीय इतिहास के तार्किक संकल्पना के लिए, ऐसा प्रदर्शन एक स्तर बनाएगा जिसके द्वारा हमारा अपना काम और दूसरों का काम भी जाँचा जा सकेगा।'

फिनबर्ग और हॉस्किन्स, दो महत्त्वपूर्ण इतिहासकारों ने जो इस स्कूल से जुड़े थे, कई अवसरों पर परंपरागत स्थानीय इतिहास की आलोचना की। जॉर्ज और यानीना शीरन के अनुसार :

> 'विचारधारा के अनुसार, फिनबर्ग और हॉस्किन्स अभिजात्य वादी और रूढ़िवादी सिद्धांत के विरोधी थे जिन्होंने परंपरागत स्थानीय इतिहास की आधारशिला रखी जिसमें उन्होंने सामंतवादी परिवारों के इतिहास पर अधिक ध्यान देने का और सामान्य व्यक्ति की उपेक्षा का भी विरोध किया था। सिद्धांत रूप से, उन्होंने पुरातनवाद, तथ्य संग्रहण पद्धति, अनुदेश और पद्धति की कमी, और दस्तावेजी स्रोतों पर अधिक निर्भरता का विरोध किया। दार्शनिक रूप से, उन्होंने 'केंद्रीय एकीकृत पद्धति' की कमी का विरोध किया, जो स्थानीय इतिहास को एक विषय के रूप में स्थापित करने का काम करेगा...'

परंपरागत स्थानीय इतिहास में इस असंगतता को दूर करने के लिए, फ़िनबर्ग ने सुझाया कि स्थानीय इतिहासकारों का काम होना चाहिए 'स्थानीय मनुष्य की उत्पत्ति, विकास, उत्थान और पतन को अपने मस्तिष्क में पुनर्रचित करना और अपने पाठकों के लिए प्रस्तुत करना'। फिर भी फिनबर्ग और हॉस्किन्स ने यह परिभाषित नहीं किया कि 'स्थानीय समुदाय' को क्या संघटित करता है। ये इसके अस्तित्व को एक स्व-प्रमाण के रूप में लेते हैं और इसके आकार को 'लघु क्षेत्र से स्थानीय क्षेत्र के क्रम में'। लिसेस्टर में उनके उत्तराधिकारी, सी. फिथियन एडम्स, अपनी पुस्तक *रीथिंकिंग इंगलिश लोकल हिस्ट्री* (1987), में एक क्षेत्र को रूपरेखा के रूप में चित्रित किया। लिसेस्टर स्कूल का मुख्य अभिलक्षण 'दृढ़निश्चयी आनुभाविक अनुसंधान और क्षेत्रकार्य, पूर्व औद्योगिक काल पर केंद्रित, सामान्य व्यक्ति की श्रेष्ठता और समुदाय की संकल्पना के रूप में वर्णित किया जा सकता है'।

एशिया और अफ्रीका में स्थानीय इतिहास की प्रकृति अलग है। यहाँ पारंपरिक रूप मुख्य रूप से मौखिक परंपरा से संबंधित है। शाहीवंश और युद्ध में उनकी उपलब्धियाँ इस परंपरा के मुख्य विषय हैं। इन

इतिहासों के कुछ भाग लिखित रूप में भी थे, किंतु मौखिक रूप प्रस्तुतीकरण की प्रभावी पद्धतियाँ थीं। भारत में, बखार (महाराष्ट्र में), रासो (राजस्थान में) और वंशावली (दक्षिण भारत में) कुछ ऐसे तरीके थे जिनमें स्थानीय पारंपरिक इतिहास प्रस्तुत किया गया। वे वंश इतिहास और इतिवृत्त हैं जो शाही परिवार के इतिहास को कहती हैं और युद्ध में सैनिकों के उपलब्धियों का बखान करती हैं। अफ्रीकी देशों में भी यह परंपरा मिथ और कथा के माध्यम से, नाटकीय अभिनय से, और अधिक औपचारिक कथाओं के माध्यम से भी बची रही। अक्सेल हर्निट सीवर्स एक संपादित पुस्तक *ए प्लेस इन दि वर्ल्ड : न्यू लोकल हिस्टोरियोग्राफीज़ फ्रॉम अफ्रीका एंड साउथ एशिया (2002)* की भूमिका में अपनी टिप्पणी देते हैं :

> 'बहुत सारे दक्षिणी एशियाई और अफ्रीकी समाजों में कुछ व्यक्ति या समूह सामान्य रूप से ऐतिहासिक ज्ञान को बढ़ाने वाले पारंपरिक विशेषज्ञ माने जाते हैं। इसको कार्यान्वित करने के कई औपचारिक तरीके हैं। एक जगह किसी गाँव में एक वृद्ध व्यक्ति हो सकता है, समुदाय में उसे स्थानीय इतिहास पर सबसे अधिक ज्ञान वाला व्यक्ति माना जा सकता है। दूसरे स्थानों पर, जैसे माली में विशेष रूप से प्रशिक्षित लोग एक व्यावसायिक इतिहासकार के रूप में कार्य करते हैं, या यहाँ तक कि इतिहास को सँजोने वाले सरकारी वैधता प्राप्त और शाही वंश परंपरा के इतिहासकार, जैसे इसेखुरे और इहोग्बे शीर्षकधारी नाइजेरिया के बेनिन के उबा राजदरबार में।'

पश्चिमी शिक्षा पद्धति के आने और उपनिवेशीय प्रभुत्व से, एशिया और अफ्रीका में नए अभिजात्य वर्ग पनपने शुरू हो गए। उनके सोचने की पद्धति पश्चिमी शिक्षा से प्रभावित थी। 19वीं शताब्दी में भारत में विश्वविद्यालय पद्धति की स्थापना और 1940 ई. के दौरान अफ्रीका में इसकी स्थापना से ऐतिहासिक ज्ञान औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में आया। फिर भी, बहुत सारा इतिहासलेखन अभी भी विश्वविद्यालय पद्धति के बाहर लिखा गया। स्थानीय इतिहास विशेष रूप से नौसिखियों के लिए और अ-शैक्षिक इतिहासकारों के लिए आकर्षक क्षेत्र था जो अपने समुदाय और स्थानीय क्षेत्र के अतीत के बारे में रुचि अनुभव करते थे। बहुत सारे ये इतिहासकार उसी समुदाय और स्थानों में जन्मे और पले-बढ़े थे जिस पर वे लिखते थे और उनमें से काफी लोग औपचारिक शिक्षा क्षेत्र के बाहर अव्यावसायिक इतिहासकार थे। यह भी सत्य है कि कुछ स्थानीय इतिहास विश्वविद्यालयों में भी लिखे गए। फिर भी, इसका अधिकांश भाग विश्वविद्यालय के बाहर के लोगों द्वारा लिखा गया।

हर्नीट-सिवर्स इन लेखनों को 'नये स्थानीय इतिहास' की संज्ञा देते हैं। पारंपरिक स्थानीय इतिहास जो मौखिक था, की तुलना में नए स्थानीय इतिहास लिखे और प्रकाशित किए गए। इसके अतिरिक्त, अतीत का हवाला देकर वृहद् संदर्भ में वे स्थानीय पहचान के पुनर्निर्माण के प्रयास थे – और जो प्रारूप में स्थानीय उद्देश्य और आवश्यकता के अनुसार "आधुनिक" इतिहास-लेखन का उपयोग करते थे। वे स्थानीयता के बारे में ज्ञान प्रदान करने के उद्देश्य से और स्थानीय जागरूकता को बढ़ाने के उद्देश्य से लिखे गए। वे वृहद् दुनिया के समक्ष स्थानीयता को सम्मान दिलाने की इच्छा रखते हैं और इसका नाम सबको मालूम कराना चाहते हैं।

नया स्थानीय इतिहास पूरी तरह से परंपरा से कटा नहीं है। वे स्थानीय मौखिक और दूसरे प्राथमिक स्रोतों का प्रयोग करते हैं और स्थानीय समुदायों की निरंतरता को बनाए रखना चाहते हैं। यह सत्य है कि वे मौखिक परंपरा के बरअक्स लिखित शब्द की शक्ति बरकरार रखते हैं। फिर भी, वे पुराने इतिहास के प्रति विरोधात्मक भाव नहीं रखते हैं और संबंधित समुदाएँ उन्हें स्थानीय गर्व की वस्तु समझते हैं। नए स्थानीय इतिहासकार, अपनी ओर से, 'स्वयं के काम को पुराने इतिहास के प्रति एक ख़तरा नहीं मानते, अपितु एक उद्देश्य मानते हैं जो इस पुराने ऐतिहासिक ज्ञान को शहरीकरण से खतरे, औपचारिक शिक्षा के ख़तरे, या युद्ध तथा विस्थापन के ख़तरे से इसकी रक्षा करता है'।

इतिहास को पूरे विश्व में समुदाय की 'रचना' और 'कल्पना' के काम में एक औजार के रूप में प्रयोग किया गया है। एशिया और अफ्रीका के नए स्थानीय इतिहास ने सामान्य अतीत के संदर्भ में समुदाय और स्थानीयता की पहचान को पुनर्रचित करने का काम किया है। राष्ट्र की सीमा के अंतर्गत, नए समुदाय 'आधुनिक समुदाय' बंन गए हैं जो, अर्जुन अप्पादुराई के शब्दों में, 'मिश्रित घटना-क्रिया विज्ञान की गुणवत्ता, सामाजिक तात्कालिकता के अर्थ में, तकनीकी अंतर्क्रिया और संदर्भ के सापेक्षता के बीच संबंध के संघटन से' निर्मित प्रक्रिया के अंग हैं। बदलता वातावरण, अंतर-क्षेत्रीय स्थानांतरण और लंबी दूरी की संप्रेषणीयता ने एक ऐसी अवस्था निर्मित की है जहाँ स्थानीय समुदाय के सदस्य भौतिक या भावात्मक रूप से किसी विशिष्ट स्थानीयता के साथ अधिक समय तक बँधे नहीं हैं। नई स्थानीय इतिहास ने इस बदले हुए वातावरण के लेखन की कोशिश की है और जैसा कि हर्नीट सीवर्स ने भी कहा है :

> 'नया स्थानीय इतिहास समुदाय के बाहरी अंतर्क्रिया की जटिलता को कम करने का प्रयास करता है। यह स्थान विशेष की एक पारम्परिक, स्वपूरित और समांगीय छवि प्रस्तुत करता है। ... वह ऐतिहासिकता पर बल दे सकते हैं और बदलाव पर भी, वृहद् संदर्भ के महत्त्व के भाग होकर भी, स्थानीय गर्व के मामले में और आधुनिकता के सूचक के रूप में भी। ऐसे इतिहास दो अतिवादी दृष्टिकोणों के बीच झूलते हैं। 'स्थानीय' और वृहद् विश्व के बीच तनाव रहता है – अधिक या कम सुस्पष्ट रूपों में – सामांन्यतः प्रत्येक नए स्थानीय इतिहास में।'

अफ्रीका और एशिया में नए स्थानीय इतिहास स्थानीयता को कई तरीकों से रचते हैं। सामान्य पूर्वजों, सामान्य संस्कृति, प्राचीन राजत्व, नातेदारी संबंध और धार्मिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक उपलब्धियों का हवाला देकर इस तरीके से वे स्थानीयता को प्रस्तुत करते हैं 'एक नैतिक समुदाय के रूप में जो एक सामान्य मूल्य-पद्धति में भागीदार है'। यह कार्य स्थानीय परंपरा और आधुनिक शैक्षिक इतिहासलेखन के स्वीकृत मिश्रण से किया जाता है।

एशिया और अफ्रीका में नए स्थानीय इतिहास का लेखन अधिकतर पश्चिमी शोध-पद्धति और सामग्री प्रस्तुतीकरण से प्रभावित है। ये इतिहास काल क्रमबद्ध हैं और इनमें स्रोतों के वृहद् पैमाने पर संदर्भ हैं। इसके अतिरिक्त, वे सामान्यतः एक विकासवादी दृष्टिकोण में माने जाते हैं। परिकल्पनाकरण धार्मिक या मिथकीय शब्दों में नहीं है अपितु आधुनिक धर्मनिरपेक्ष शब्दों में है। फिर भी, विषय-वस्तु को, वे मुख्य रूप से पारंपरिक लिखित और मौखिक स्रोतों से निष्पादित करते हैं और उनके स्रोतों का प्रयोग सामान्यतः अतार्किक है। यद्यपि वे कभी-कभी काल के रेखीय अर्थ को ग्रहण करते हैं पश्चिमी मॉडल के समान, लेकिन वे हमेशा अपने वर्णित कथा के मूल में मिथकीय और पारंपरिक नायकों को शामिल करते हैं जिनका जीवन और कार्य किसी भी कालक्रम में सही नहीं बैठ सकता और जिसको प्रमाणित नहीं किया जा सकता। यद्यपि इन इतिहासों का रूप पश्चिमी संकल्पना और पद्धति से मेल खा सकता है, उनके विषय-वस्तु और वर्णन् तकनीक स्थानीय परंपराओं पर आधारित हैं।

इन इतिहासों के पाठक राष्ट्रीय और स्थानीय दोनों हैं या इससे भी दूर तक फैले हैं। चूँकि ये लिखे और प्रकाशित किए जाते हैं और आधुनिक प्रस्तुतीकरण पद्धति का प्रयोग करते हैं, उनकी पहुँच स्थानीयता के आगे है। फिर भी, वे स्थानीयता और इसकी परंपरा से संबंध रखते हैं। इसके अतिरिक्त, ये स्थानीय इतिहास सामान्य शैक्षिक पाठ नहीं हैं। वे स्थानीय गर्व के निर्धारक के रूप में भी काम करते हैं और सामुदायिक तथा स्थानीय पहचान की भावना प्रदान करते हैं।

अफ्रीका और एशिया में नए स्थानीय इतिहास, इसलिए, दो स्तरों पर काम करते हैं – स्थानीय और स्थानीयता से परे। उनके लेखक सामान्य तौर पर आधुनिक शिक्षा पद्धति की देन हैं और आधुनिक ऐतिहासिक संकल्पना और पद्धति को ग्रहण करते हैं जो स्थानीय समाज से अलग भी

हो सकती है। उसी समय, उनका काम स्थानीय परंपराओं से निष्पादित होता है और सीधे तौर पर स्थानीय बहस में भाग लेता है। यहाँ तक कि ये इतिहास अतीत को पारंपरिक रूप से प्रस्तुत करने को चुनौती देती हैं, वे स्थानीय परंपरा के आधार पर फलते-फूलते हैं और आवश्यक रूप से इन्हें हटाते नहीं हैं।

11.3 मौखिक इतिहास

मौखिक इतिहास की सीमाएँ पूरी तरह छिद्रिल हैं। यह आधुनिक और पूर्व आधुनिक काल साक्षर और पूर्व साक्षर संस्कृति के बीच, व्यक्ति और समूह के बीच, तथा विषय और लेखक के बीच की रेखा को पार करती है। यद्यपि रोनाल्ड जे. ग्रील 'मौखिक इतिहास' पर अपने लेख में परेशान होकर लिखते हैं :

> "जब मौखिक इतिहासकार, या वे जो 'मौखिक इतिहास' शब्द का प्रयोग अपने लेखन में करते हैं, वर्णित करते हैं कि वे क्या करते हैं, तो वे शैली को स्वच्छंदता से मिश्रित करते हैं। कुछ समय जो वर्णित किया जाता है वह मौखिक परंपरा होती है; अन्य समय में, जीवन इतिहास, जीवन समीक्षा, या जीवन गति होती है। कुछ मौखिक गति इतिहासकारों के लिए इस इतिहास का मतलब साक्षात्कार का संग्रह अभिलेखीय उद्देश्य के लिए होता है, जिससे भविष्य के लिए रिकॉर्ड प्रदान किया जा सके। दूसरों के लिए साक्षात्कार का संचालन विशेष प्रकाशन के लिए या जन इतिहास परियोजनाओं के लिए होता है, और कुछ दूसरों के लिए इसका अर्थ 'सामुदायिक सत्ता' का मार्ग प्रशस्त करना होता है। इसके अतिरिक्त 'मौखिक इतिहासकार' शब्द बड़े स्वच्छंदता के साथ प्रयुक्त होता है। कुछ लोग तर्क करते हैं कि मौखिक इतिहासकार वह व्यक्ति है जिसका साक्षात्कार होता है या वह है जो साक्षात्कार करता है या वाचक जो इतिहास कहता है। इस पर भी कोई सहमति नहीं है कि जिनका साक्षात्कार होता है उन्हें क्या कहा जाए। वे साक्षात्कारकर्ता कहे जा सकते हैं, वाचक, विषय, प्रतिवादी भी कहे जा सकते हैं। हाल के वर्षों में मौखिक इतिहास एक संज्ञा बन गया है, वस्तु स्वयं में संग्रहित होता है, बजाय इसके कि ऐतिहासिक उद्देश्य के लिए साक्षात्कार का कार्य। वास्तव में अब यह बहस का मुद्दा बन गया है कि मौखिक इतिहासकार सामान्य रूप से मौखिक इतिहास का संग्रह करते हैं या निर्माण करते हैं।"

इन प्रश्नों के अलावा, मौखिक इतिहास किसी भी रूप में रानकेवादी परंपरा में प्रशिक्षित रूढ़िवादियों को अस्वीकार है जो 'प्राथमिक स्रोतों' पर बहुत जोर देते हैं। कोई भी अन्य स्रोत कम उपयोगी है, और मौखिक साक्ष्य तो बिल्कुल बेकार है। आधुनिक पश्चिम की साक्षर संस्कृति में, जो लिखित नहीं है वह है ही नहीं। अत: 1831 ई. में हेगल ने घोषणा की कि अफ्रीका 'विश्व का ऐतिहासिक भाग नहीं है'। 1965 तक भी, ह्यू ट्रेवर रोपर ने कहा कि अफ्रीका का कोई इतिहास नहीं था। 'हो सकता है कि भविष्य में पढ़ाने योग्य अफ्रीका का इतिहास हो जाए। लेकिन वर्तमान में कुछ भी नहीं है, या बहुत कम है। अफ्रीका में सिर्फ यूरोपीय लोगों का इतिहास है।' जहाँ तक इतिहास लिखने के मौखिक स्रोतों के महत्त्व की बात है, ए. जे. पी. टेलर ने दृढ़ता के साथ घोषित किया : 'इस मामले में, मैं लगभग पूरी तरह से संदेहयुक्त हूँ। वृद्ध व्यक्ति अपने युवावस्था का वर्णन करता हुआ? नहीं!' इस अति प्रतिक्रिया के अलावा, बहुत ऐसे भी लोग हैं जो इस व्यवहार के प्रति संदेहयुक्त हैं क्योंकि इसका रूप अयथार्थ है, कालक्रम अनिश्चित है, आँकड़ा असहयोगात्मक है और यह बहुत छोटे स्तर पर ही व्यवहार में लाया जा सकता है।

ऐसी प्रतिक्रियाओं ने आशा के अनुरूप मौखिक इतिहासकारों द्वारा क्रोधी प्रत्युत्तर आमंत्रित किया। पॉल थाम्पसन, जो मौखिक इतिहास के प्रमुख व्यक्ति हैं ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक, *दि वॉयस ऑफ दि पास्ट:*

ओरल हिस्ट्री (1978) में लिखते हैं, कि:

> 'मौखिक प्रमाण का विरोध भावना पर उतना ही आधारित है जितना सिद्धांत पर। पुरानी पीढ़ी के इतिहासकार जो ऊँचे पदों पर हैं और अनुदानों की झोली पर जिनका कब्जा है, वे सहज रूप से नई पद्धति के आगमन से आशंकित हैं। यह इंगित करता है कि वे अब अपने व्यवसाय की सभी तकनीकों पर अधिकार नहीं रखते हैं। इसलिए युवा व्यक्ति के प्रति इस तरह की अपमानजनक टिप्पणी करते हैं कि वह गलियों में टेप रिकॉर्डर लेकर टहलता रहता है।'

जॉन वन्सिना एक दूसरे महान् मौखिक इतिहासकार जिन्होंने अफ्रीका में काम किया है। वे उतने ही बेबाक हैं इतिहास में मौखिक स्रोतों के महत्त्व के बारे में :

> 'अतीत के पुनर्निर्माण में मौखिक परंपरा को एक भूमिका निभानी है। इस भूमिका का महत्त्व काल और परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है। यह भूमिका लिखित स्रोतों की भूमिका के बराबर है क्योंकि दोनों अतीत से वर्तमान के लिए संदेश हैं, और संदेश ऐतिहासिक पुनर्निर्माण में मुख्य तत्त्व हैं। किंतु उनका संबंध आपेरा की प्रधान गायिका और उसकी शिष्या के बीच संबंध की तरह नहीं है। जब प्रधान गायिका गा नहीं सकती तो शिष्या गाती है : जब लेखन काम नहीं करता, परंपरा परिदृश्य पर आती है। यह गलत है। जहाँ कहीं भी मौखिक परंपराएँ उपलब्ध हैं वे ऐतिहासिक पुनर्निर्माण की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्रोत होती हैं। वे दूसरे दृष्टिकोणों को सही करती हैं उसी तरह जैसे दूसरे दृष्टिकोण इसे सुधारते हैं।'

यह साफ है कि मुख्यधारा, जो पूरी तरह से लिखित स्रोतों पर विश्वास करती है, और मौखिक इतिहास, जो मौखिक स्रोतों को अतीत के पुनर्निर्माण में अधिक महत्त्व प्रदान करती है, के बीच रेखा खींची गई है। फिर भी, यह पहचाना जाना चाहिए कि मौखिक इतिहास अब सामान्य रूप से साक्षात्कार लेकर अभिलेखागारों को भरना मात्र नहीं है। इसके बदले में, यह इतिहासलेखन की एक शाखा के रूप में परिपक्व हुई है जो सभी तरह के आत्मपरक अनुभवों को समझने की कोशिश करती है। लोक विश्वास, यादें, मिथ, विचारधारा, समझ और चेतना सभी मौखिक इतिहासकारों के अनुसंधान के लिए वैधानिक आधार बन गए हैं। मौखिक इतिहास अब नए तरह के ऐतिहासिक लेखन के प्रयास में बड़ी आशा है जिसमें शामिल है 'न सिर्फ नज़रअंदाज किए गए लोगों के दस्तावेजों का निर्माण बल्कि किस तरह से समुदाय में शामिल लोग स्वयं अपने इतिहासकार बनते हैं और अपना इतिहास प्रस्तुत करते हैं'।

मुख्यधारा के इतिहासकारों से उपेक्षित होकर भी, मौखिक इतिहासकारों ने नई जमीन बनाई है और अच्छी गुणवत्ता के कई कार्य प्रस्तुत किए हैं। पॉल थॉम्पसन *दि वॉयस ऑफ दी पास्ट : ओरल हिस्ट्री* (1978) में प्रत्यक्षवादी और अनुभववादी इतिहासलेखन के विरोध में मुद्दों को उठाते हैं और इसे सही भी करना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त यह इतिहास प्रस्तुति के लिए उनसे संबद्ध है जिन्हें न सिर्फ व्यावसायिक इतिहासलेखन द्वारा उपेक्षित किया गया है अपितु लिखित स्रोतों में भी जिन पर ध्यान नहीं दिया गया है। जॉन वन्सिना, अपने *ओरल ट्रेडिशन ऐज हिस्ट्री (1985)* में विस्तार के साथ कहते हैं कि कैसे मौखिक परंपराएँ ऐतिहासिक प्रमाण के लिए समृद्ध स्रोत का काम कर सकती हैं। उनकी दूसरी श्रेष्ठ कृति, *पाथ्स इन दि रेन-फारेस्ट* (1990) भू-मध्यवर्ती मध्य एशिया के पूर्व-औपनिवेशिक इतिहास से संबंध रखता है। अलेसांद्रो पोर्टेली का *दि डेथ ऑफ लुगी ट्रस्टुली एंड अदर स्टोरीज़* (1991), इटालियन कामगारों का अंतर्दृष्टिपरक अध्ययन और अमेरिका में अपलाची समुदाय के लोगों का अध्ययन मौखिक इतिहास का महत्त्वपूर्ण योगदान है। डेविड के. डनवे और विल्ला के. बॉम (संपादित), *ओरल हिस्ट्री* (1984, 1996) कई देशों में मौखिक इतिहास को शामिल करती है। लीसा पस्सेरीनी का *फासिज़्म इन पॉपुलर मेमरी* (1984), देवरा वेबर का *ार्क स्वेट,*

व्हाइट गोल्ड (1994), देबोरा लेवेंसन-एस्टराडा का *ट्रेड यूनियनिस्ट्स अगेंस्ट टेरर* (1994), रॉफेल सेमुअल का *थीएटर्स ऑफ मेमरी* (1994) और किम लेसी रोजर्स का *राइटियस लाइव्स* (1995) कुछ महत्त्वपूर्ण अध्ययन हैं जो मौखिक स्रोतों का प्रयोग करते हैं। इनके अतिरिक्त, *द इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ओरल हिस्ट्री, द हिस्ट्री वर्कशॉप जर्नल,* और कुछ अन्य पत्रिकाओं ने दूसरे देशों में मौखिक इतिहास के लिए एक मंच तैयार किया है। ब्रिटेन, अमेरिका, अर्जेण्टीना, ब्राजील, मेक्सिको, रूस, स्पेन, दक्षिण अफ्रीका, स्वेडन और कई देशों में मौखिक इतिहास के औपचारिक और अनौपचारिक संगठन हैं। मौखिक इतिहास पर कई अंतरराष्ट्रीय स्तर की सभाएँ और सम्मेलन हुए हैं। इन सब विकासों से यह साफ हो गया है कि मौखिक इतिहास एक महत्त्वपूर्ण इतिहासलेखन व्यवहार के रूप में अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य में पहुँच गया है।

फिर भी, मौखिक इतिहास अपने इतिहास निष्पादन में एक रचनात्मक तनाव का सामना करता है जो उसे प्रचुरता में उपलब्ध दस्तावेजों पर आधारित इतिहास के समकक्ष खड़ा कर सके। यहाँ तक कि जो मौखिक स्रोतों के इस्तेमाल की वकालत करते हैं वे भी मानते हैं कि इसमें कई समस्याएँ भरी पड़ी हैं। इसलिए एरिक हाब्सकॉम लिखते हैं कि 'मुख्य मौखिक इतिहास आज व्यक्तिगत स्मृतियाँ हैं, जो तथ्यों को सँजोने का थोड़ा अविश्वसनीय माध्यम है। बात यह है कि स्मृतियाँ अंकन मात्र नहीं हैं बल्कि एक चयनित प्रक्रिया की तरह है, और यह चयन एक सीमा के अंतर्गत, स्थिर रूप से बदलता हुआ है'। वह तर्क करते हैं कि इस इतिहास का महत्त्व सिर्फ यह नहीं है कि सिर्फ तथ्यों का अंकन किया जाए अपितु यह है कि लोगों के मस्तिष्क को समझा जाए, यह जानने के लिए कि 'क्या सामान्य लोग बड़ी घटनाओं को उच्चवर्गीय लोगों की अपेक्षा अलग ढंग से समझते हैं, या जो हुआ उसे इतिहासकार किस रूप में स्थापित करते हैं, और जहाँ तक वे अपनी याद को मिथ के रूप में परिणत करते हैं, और कैसे ये रूप बनते हैं'। यद्यपि यह सलाह महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह मौखिक इतिहास को दैनिक कार्य से आगे बढ़ाता है जिसमें 'बूढ़ी औरतों और संज्जन पुरुषों की संस्मृतियों के टेप की विश्वसनीयता का परीक्षण करना शामिल है, फिर भी यह मौखिक इतिहासकारों के उत्साह को कम कर देती हैं। यह सत्य है कि मौखिक इतिहास ने एक स्वतंत्र स्थिति प्राप्त कर ली है क्योंकि अब यह अंकन क्रियाकलाप नहीं रह गया है बल्कि इतिहास-लेखन बन गया है। यह उन क्षेत्रों और अवस्थाओं में आगे बढ़ा है जिसे पारंपरिक पद्धति ने या तो उपेक्षित किया है या जहाँ वह अफसल है। इसके बावजूद, इसके व्यवहारकर्ताओं द्वारा यह माना जाता है कि मौखिक स्रोत सिर्फ अपने बल पर अतीत के लिए आवश्यक ज्ञान नहीं दे सकते हैं। सारांश में, हम एक प्रमुख मौखिक इतिहासकार जॉन वन्सिना के शब्दों में विस्तार के साथ उद्धृत कर सकते हैं :

> 'जहाँ कोई लेखन नहीं, या बहुत कम है, वहाँ मौखिक परंपराओं को ऐतिहासिक पुनर्निर्माण के लिए आगे आना चाहिए। वे लिखित स्रोतों की तरह उपयोग में तो नहीं लाए जा सकते। लेखन तकनीकी चमत्कार हैं। यह उद्गार को स्थायी बनाता है उनकी विश्वसनीयता को खोए बिना, यहाँ तक कि तात्कालिक अंतरंग संप्रेषण की अवस्था खोने के बावजूद। अतः, जहाँ लेखन वृहद् रूप से प्रयुक्त होता है, वहाँ बहुत विस्तृत और विभिन्न सूचना स्रोतों की अपेक्षा की जा सकती है, जो अतीत के विस्तृत पुनर्निर्माण के लिए ज़मीन प्रदान करता है। इतिहासकार जो साक्षरता के किसी भी प्रमुख क्षेत्र में पिछले कुछ शताब्दियों के लिखित स्रोत के आधार पर कार्य करते हैं उन्हें यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि मौखिक सामग्रियों के प्रयोग से उतना ही पूर्ण, विस्तृत और यथार्थपरक इतिहास प्राप्त हो जाएगा। मौखिक परंपरा की सीमा को पूर्ण रूप से सराहा जाना चाहिए जिससे यह निराशा के रूप में नहीं आना चाहिए कि लंबे समय के शोध ने भी ऐसा कार्य नहीं प्रस्तुत किया जो विस्तृत है। मौखिक स्रोतों से जो पुनर्रचित होता है वह निम्न स्तर की विश्वसनीयता कही जाएगी, जब कोई अन्य स्वतंत्र स्रोत पूरे परीक्षण के लिए न हो, और जब संरचना या कालक्रम की समस्या मुद्दों को और भी अधिक उलझा दे।'

11.4 सूक्ष्म इतिहास

सूक्ष्म इतिहास का स्थानीय और मौखिक इतिहास से जिज्ञासापरक संबंध है। यह स्थानीय इतिहास से मेल खाता है क्योंकि इसका विषय स्थानीयता से संबंधित है। इसके अतिरिक्त, इसके स्रोत मूल और प्रकृति में स्थानीय हैं। मौखिक स्रोत, लोककथाएँ और पारंपरिक और स्थानीय अंकन जो स्थानीय इतिहास के मुख्य विषय हैं, वे भी वृहद् स्तर पर सूक्ष्म इतिहासकारों द्वारा प्रयोग किए जाते हैं। किंतु साम्यता यहीं खत्म होती है। एम. एम. पोस्टन ने एक बार सूक्ष्मदर्शी और लघु ब्रह्मांडीय अध्ययन में विभेद किया था। सूक्ष्मदर्शी अध्ययन वे हैं जो स्थानीय महत्त्व और रुचि तक बँधे रहते हैं, जबकि 'लघु ब्रह्मांडीय' अध्ययन वृहद् संदर्भ में स्थित लघु क्षेत्रों के गहन अध्ययन हैं। इस दृष्टिकोण से, स्थानीय इतिहास का अधिकतर भाग 'सूक्ष्मदर्शी' अध्ययन है, जबकि सूक्ष्म इतिहास पूर्ण रूप से 'लघु ब्रह्मांडीय' पद्धति का अध्ययन है।

कार्लो गिन्जबर्ग, जो सूक्ष्म इतिहास के एक बहुचर्चित इतिहासकार हैं, ने कहा कि इस शब्द का प्रथम प्रयोग अमेरिकी विद्वान् जॉर्ज आर. स्टीवर्ट ने किया है। अपनी पुस्तक, *पिकेट्स चार्ज : ए माइक्रो हिस्ट्री ऑफ दि फाइनल चार्ज ऐट गेटिसबर्ग, जुलाई 3, 1863,* (1959) में स्टीवर्ट ने पहली बार इस शब्द का प्रयोग किया। पुस्तक एक घटना पर केंद्रित है जो लगभग बीस मिनट तक हुई। 1968 में, लुइ गोंजलेज ने 'सूक्ष्म इतिहास' शब्द का प्रयोग अपनी पुस्तक के उपशीर्षक के रूप में किया है जो चार शताब्दियों तक मेक्सिको के एक छोटे 'विस्मृत' गाँव में हुए परिवर्तन के अनुभव से संबंध रखता है। वास्तव में, जैसा कि गोंजालेज ने स्वयं कहा है, यह शब्द 1960 ई. में फर्नान्ड ब्रोदेल के द्वारा भी प्रयुक्त हुआ है। किंतु, ब्रोदेल के लिए, इसमें नकारात्मक अर्थ था और 'घटनाओं के इतिहास' के समानार्थी था। यह शब्द 1965 में रेमंड केन्यू के उपन्यास में भी आता है। इस पुस्तक का 1967 में इटालो केल्विनो द्वारा इतालवी में भी अनुवाद हुआ। इस पुस्तक से और प्राइमो लेवी के *पीरियाडिक टेबल* (1975) से यह शब्द लगातार कुछ प्रकार के ऐतिहासिक व्यवहार के लिए प्रयुक्त होता रहा है। जिओवानी लेवी पहले इतालवी इतिहासकार थे जिन्होंने इस शब्द का लगातार प्रयोग किया।

एक माने हुए ऐतिहासिक व्यवहार के रूप में सूक्ष्म इतिहास, इटली में 1970 और 1980 के दशक में उभरा। यद्यपि इसके समानार्थी शब्द जर्मनी में *अल्टाग्शीटे* या 'दैनिक जीवन का इतिहास', और फ्रांस में तथा अमेरिका में नए सांस्कृतिक इतिहास के रूप में उपलब्ध था, ये इतालवी सूक्ष्म इतिहासकार ही हैं जिन्होंने इस तरह के इतिहास को लिखने का आधार तैयार किया। कार्लो गिन्जबर्ग, जिओवानी लेवी, कार्लो पोनी, एडोर्डो ग्रेंडी और गिआना पोमाटा जैसे कुछ इतालियन इतिहासकार हैं जिन्होंने इस शब्द को अपने लेखन से प्रसिद्ध बनाया। गिन्जबर्ग का *दि चीज एंड दि वर्म्स : दि कॉस्मोस ऑफ ए स्क्स्टीन्थ-सेंचुरी मिलर* (1976), *दि एनिग्मा ऑफ पिअरो : पिअरो डेल्ला फ्रांसेस्का* (1981), और *एक्स्टेसीज : डेसीफरिंग दि विचेज सब्बाथ* (1990), और जिओवानी लेवी का *इनहेरिटिंग पॉवर : दि स्टोरी ऑफ एन एक्सोर्सिस्ट* (1985) इस इतिहासलेखन परंपरा की कुछ प्रतिनिधि पुस्तकें हैं। इतालियन जर्नल, *क्वादर्नी स्टोरीची,* ने अपनी संस्थापना (1966) से ही इतिहासलेखन परंपरा के इस श्रृंखला में कार्य किया है। फिर भी, सूक्ष्म इतिहास, एक वृहद् परंपरा का अंग है जिसमें वैयक्तिक अध्ययन और स्थानीय अध्ययन शामिल हैं, वे हैं – फ्रांस में एमानुएल ले रॉय लादुरी, जर्मनी में हैन्स मेडिक और अमेरिका में राबर्ट डार्न्टन और नताली जेमन डेविस।

सूक्ष्म इतिहास आधुनिक इतिहासलेखन की समस्या का परवर्ती आधुनिक, या उत्तर आधुनिक प्रत्युत्तर के रूप में उभरा। सूक्ष्म इतिहासकार न सिर्फ रानके वादी परम्परा के आलोचक हैं, बल्कि मार्क्सवाद द्वारा विकसित वृहद् ऐतिहासिक प्रतिमान, अनाल स्कूल और यहाँ तक कि पुराने सामाजिक इतिहास के भी आलोचक हैं। सूक्ष्म इतिहासकार आधुनिक तकनीक के द्वारा लाए गए कई प्रकार के फायदों

के बारे में आशावादी नहीं हैं। अतः वृहद् ऐतिहासिक विमर्श पर उनका आरोप न सिर्फ सैद्धांतिक हैं, बल्कि नैतिक और राजनीतिक भी हैं। उनका तर्क है कि वृहद् ऐतिहासिक संकल्पना आधुनिकीकरण की उपलब्धियों की प्रशंसा करती है, और आधुनिक विज्ञान और तकनीकी की प्रशंसा मानव मूल्य को उपेक्षित करके करते हैं। वे उन 'छोटे लोगों' के अनुभवों की भी उपेक्षा करते हैं जो 'विकास' के आवेग को सहते हैं। सूक्ष्म इतिहासकार विश्लेषणात्मक सामाजिक विज्ञान, मार्क्सवाद के वृहद् इतिहास और अनाल स्कूल के ग़ैर-मानवीय इतिहास के सिद्धांत के विरुद्ध अपने इतिहासलेखन व्यवहार को परिभाषित करते हैं।

सूक्ष्म इतिहासकार इसका मूल 1970 के वृहद् इतिहास के संकट की विचारधारा में खोजते हैं। महा आख्यानों से और परिमाणात्मक आँकड़ों पर आधारित सामाजिक वैज्ञानिक अध्ययन से मोह भंग हो रहा था, इसलिए नहीं क्योंकि इनके सिद्धांत गलत थे बल्कि इसलिए कि ये सूक्ष्म स्तर यथार्थ को नहीं पकड़ते थे। सूक्ष्म इतिहासकारों के अनुसार, 'इतिहास को सामान्य लोगों के लिए उपलब्ध करना चाहिए जो अन्य पद्धतियों में नज़रअंदाज किए गए हैं'। और 'छोटे समूह के स्तर पर ऐतिहासिक कारणों को प्रसारित करना जहाँ अधिकांश जीवन्तता होती है'। जिओवानी लेवी, जो इस परंपरा के एक संस्थापक हैं, के अनुसार यह सामान्य रूप से स्वीकृत है कि '1970 और 1980 का दशक सार्वभौम रूप से पूरी तरह संकटों का वर्ष है इस बढ़ते हुए इस आशावादी विश्वास के प्रति कि पूरी दुनिया तेजी से और उग्र रूप से आंदोलनकारी लकीर पर बदलेगी'। इसके अतिरिक्त, 'बहुत सारी आशाएँ और मिथक जिसने पहले सांस्कृतिक विवाद में प्रमुख भूमिका निभाई, जिसमें इतिहासलेखन के क्षेत्र भी शामिल थे, इतने ग़लत साबित नहीं हुए जितना राजनीतिक घटनाओं और सामाजिक वास्तविकताओं के असंभावित परिणामों के झेलने से अपर्याप्त साबित हो गए – ऐसी घटनाएँ और वास्तविकताएँ जो उन आशावादी नमूनों से काफी दूर थे जिसे महान् मार्क्सवादियों और प्रकार्यवादी पद्धतियों ने प्रस्तावित किया था। इस संकट के कारण संकल्पना और पद्धति के स्तर पर भी दिन-प्रतिदिन की वास्तविकताओं को समझने में मुश्किल हुई। लेवी कहते हैं कि 'संकल्पनात्मक औज़ार जिसके द्वारा समाज वैज्ञानिक अपने पूरे लगाव के साथ वर्तमान और अतीत के बदलाव को समझे वह अंतर्निहित प्रत्यक्षवाद के बोझ से दबा हुआ था। सामाजिक व्यवहार का पूर्वानुमान पूरी तरह से गलत साबित हो रहा था और इस वर्तमान पद्धति और प्रतिमान की नाकामी नए सामाजिक सिद्धांत के निर्माण को उतना आवश्यक नहीं ठहरा रही थी। सूक्ष्म इतिहास इस वृहद् संकट का एक उत्तर था। यह एक मूलगामी और आधारभूत उत्तर था और यह इतिहासलेखन को 'बड़ी संरचना' लंबी प्रक्रिया और भारी-भरकम तुलनाओं से आगे ले गया'। यह समाज की छोटी इकाइयों पर केंद्रित था। यह वृहद् परिमाणात्मक अध्ययनों का और बड़े स्तर के विमर्शों का पूरी तरह से विरोधी था क्योंकि यह छोटे स्तर के यथार्थ पर ध्यान नहीं देते थे। जैसा कि जिओवानी लेवी इसको प्रस्तुत करते हैं : 'सभी सूक्ष्म ऐतिहासिक अध्ययन के मूल में यह विश्वास है कि सूक्ष्मदर्शी परीक्षण पूर्व परीक्षणों में न खोजे गए कारकों का पता लगाएँगे'। फिर भी, लेवी के अनुसार, इसके महत्त्व को सैद्धांतिक स्तर पर नहीं देखा जाना चाहिए। सूक्ष्म इतिहास 'मूल रूप से एक इतिहासलेखन है जबकि इसके सैद्धांतिक संदर्भ विविध है, और, एक अर्थ में, बिखरे हुए हैं'। यह इतिहासलेखनीय अनुभव था जिसमें 'कोई भी स्थापित मान्यता नहीं थी'।

इस संकट के प्रति कई दूसरी प्रतिक्रियाएँ भी थीं। उनमें से एक, लेवी के शब्दों में, 'निराशावादी सापेक्षतावाद का, नव-आदर्शवाद का और यहाँ तक कि अतार्किक दर्शन का' सहारा लेना था। फिर भी, लेवी विश्वास करते थे कि 'ऐतिहासिक अनुसंधान पूरी तरह से आलंकारिक और सौंदर्यात्मक क्रियाकलाप नहीं है'। वह पूरी तरह से इतिहासकारों और समाजवैज्ञानिकों का पक्ष लेते हैं जो विश्वास करते हैं कि पाठ के बाहर यथार्थ है और इसे समझना संभव है। अतः सूक्ष्म इतिहासकार 'न सिर्फ अर्थों के बोधन से संबंधित हैं अपितु संकेतपरक विश्व की अनेकार्थता की परिभाषा से भी संबंधित हैं, इसके अतिरिक्त संभावित बोधन की बहुलता और सांकेतिकता और

सामग्री संसाधनों के बीच संघर्ष से भी यह संबंधित है'। इसलिए लेवी के लिए, सूक्ष्म इतिहास उत्कृष्ट ढंग से उत्तर आधुनिक सापेक्षतावाद और विश्लेषणात्मक समाज विज्ञान के सिद्धांत के बीच सामंजस्य पैदा करता है।

> 'सूक्ष्म इतिहास का तथाकथित नए इतिहास के अंतर्गत विशिष्ट स्थान है। यह न सिर्फ शैक्षिक इतिहासलेखन के उन पक्षों के सही करने का प्रश्न है जो अधिक समय तक कार्य नहीं कर सके। यह अधिक महत्त्वपूर्ण है कि सापेक्षतावाद, अतार्किकवाद को नकारा जाए, और इतिहासकारों के कार्यों को पूरी तरह से आलंकारिक कार्यकलाप के रूप में न समझा जाए जो सिर्फ पाठों की व्याख्या करते हैं न कि घटनाओं की'।

कार्लो गिन्जबर्ग लेवी का समर्थन करते हैं 'सापेक्षतावादियों की स्थिति के विरुद्ध, जिसमें से एक एंकरस्मिट के द्वारा समर्थित है जो इतिहासलेखन को पाठीय दृष्टिकोण तक सीमित करता है और किसी भी संज्ञानात्मक मूल्य से वंचित करता है'।

इटली में सूक्ष्म इतिहास को मानने वालों ने अपनी शुरूआत मार्क्सवादी विचारधारा से किया था और अपने मार्क्सवादी अतीत के अनुसार वे मार्क्सवादी इतिहास के सिद्धांत के तीन तत्त्वों को याद रखते हैं। वे विश्वास करते हैं कि :

i) सामाजिक और आर्थिक असमानता सभी समाजों में होती है;

ii) संस्कृति पूरी तरह से स्वायत्त नहीं है, बल्कि आर्थिक शक्तियों से संबंधित है; और

iii) इतिहास कविता की तुलना में समाज विज्ञान के नजदीक है और, इसलिए, तथ्य पर आधारित है और अत्यधिक विश्लेषण की माँग करता है। इसके अतिरिक्त, इतिहासकार जो विषय लेकर चलते हैं वह वास्तविक होता है।

सूक्ष्म इतिहास, यह स्वीकार करता है कि 'अनुसंधान की सभी स्थितियाँ संरचित होती हैं न कि प्रदत्त' फिर भी, गिन्जबर्ग के अनुसार, सूक्ष्म इतिहास 'संशयवादी निर्णय का एक स्पष्ट अस्वीकार है जो अत्यधिक रूप से 1980 और 1990 के दशकों के प्रारंभ में यूरोप और अमेरिका के इतिहासलेखन में उपस्थित था'। यह 'संदर्भ पर केन्द्रित है, न कि टुकड़ों के पृथक् चिंतन पर'। यह जिसे एडोर्डो ग्रेंडी नामक विचारक ने 'अपवादरूपी सामान्य' का नाम दिया। सैद्धांतिक रूप से, जैसा कि लेवी ने कहा है, इसे परिलक्षित किया गया है, 'परीक्षण के स्तर में कमी के आधार पर व्यवहार, सूक्ष्मदर्शी विश्लेषण करके और दस्तावेजी सामग्री पर गहन अध्ययन करके'। वह आगे बलपूर्वक कहते हैं कि 'सूक्ष्म इतिहास के लिए माप की कमी एक विश्लेषणात्मक पद्धति है जिसे कहीं भी स्वतंत्र रूप से उद्देश्य विश्लेषण की दृष्टि से प्रयोग किया जा सकता है'। सूक्ष्म इतिहासकार मानते हैं कि यह सिर्फ लघु स्तर है कि कई मूल्यों और विश्वासों की वास्तविक प्रकृति जो लोगों में होती है उसे उद्घाटित किया जा सकता है। रोजर चार्टियर ने, गिन्जबर्ग की पुस्तक *दि चीज़ एंड दि वार्म्स* पर टिप्पणी करते हुए सूक्ष्म इतिहास के बारे में कहते हैं :

> 'यह कम माप, और संभवतया केवल इस माप पर, जिसे हम विश्वास की पद्धति, मूल्य, और प्रतिनिधित्व तथा सामाजिक मेल के बीच संबंध के रूप में समझ सकते हैं।'

लघु स्तर पर अध्ययन सांस्कृतिक मानव विज्ञानियों द्वारा भी किया गया है, जिसे क्लिफोर्ड गीर्ज ने नेतृत्व प्रदान किया, जिनके वृहद् वर्णन की पद्धति इन इतिहासकारों के कार्यों में परिलक्षित होती है। फिर भी, दोनों में कई बिंदुओं पर भेद भी हैं। सर्वप्रथम, सूक्ष्म इतिहासकार सिद्धांत को अधिक महत्त्व देते हैं अपेक्षाकृत गीर्ज और उनके अनुयायियों के। दूसरा, सापेक्षता की दिशा में वे बहुत आगे नहीं जाना चाहते। और, अंत में, वे गिर्ज के काम में संस्कृति की एकसमान संकल्पना की आलोचना गिर्ज

के काम में करते हैं। जैसा कि लेवी कहते हैं :

> 'ऐसा लगता है कि बोधपरक मानव विज्ञान और सूक्ष्म इतिहास में दृष्टिकोणों का मुख्य भेद यह है कि जहाँ मानव विज्ञानी जन प्रतीक और संकेतों में एकसमान अर्थ देखते हैं जबकि सूक्ष्म इतिहासकार सामाजिक प्रतिनिधित्व के आधार पर उसे मापना और परिभाषित करना चाहते हैं।'

लेवी सूक्ष्म इतिहास के प्रमुख अभिलक्षण को संक्षेप में कहते हैं : 'लघु स्तर पर ध्यान देना, तर्क के प्रति विवाद, वैज्ञानिक प्रतिमान के रूप में लघु संकेत, विशिष्ट की भूमिका (फिर भी, समाज के विरुद्ध नहीं), कथन और आख्यान पर ध्यान, संदर्भ की विशिष्ट परिभाषा, और सापेक्षतावाद का अस्वीकार'।

किंतु सूक्ष्म इतिहासकारों को, यहाँ तक कि इटली में भी, अखंडित भाग के रूप में नहीं देखा जा सकता। उनमें वृहद् विभेद हैं। एक तरफ लेवी हैं जो सिद्धांत रूप से विश्लेषणात्मक इतिहास के काफी नज़दीक हैं और मानते हैं कि इतिहास समाज विज्ञान है न कि एक कला। दूसरी तरफ, गिआना पोमाटा मानती हैं कि सूक्ष्म इतिहास 'एक चकित करने वाली इतिहास की दृष्टि है जो पूरी तरह से समाज विज्ञान के अति कठिन स्तर पर है जबकि, स्थायित्व और दृष्टि की तीव्रता से, कला के निकट है'। कार्लो गिंजबर्ग कुछ मध्य में खड़े होते हैं। लेकिन अपनी सम्पूर्णता में, जार्ज जी. इगर्स के अनुसार, सूक्ष्म इतिहास 'कभी भी वृहद् संरचनाओं और रूपांतरणों के प्रतिमान को छोड़ने में सक्षम न हो पाया'। फिर भी, सूक्ष्म इतिहासकारों के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि यह एक सचेतन चुनाव है और न कि एक सैद्धांतिक फिसलन या भटकाव। उन्होंने वृहद् इतिहास के पद्धति की आलोचना की है; किंतु, साथ ही साथ उन्होंने पूरी तरह से सापेक्षतावाद को खारिज किया जो भाषावैज्ञानिक मोड़, उत्तर आधुनिकतावाद, और सांस्कृतिक सापेक्षवाद से संबंधित रहा है।

11.5 सारांश

इस इकाई में हमने इतिहास-लेखन की तीन शाखाओं के बारे में चर्चा की है जो प्रकाश डालते हैं स्थानीय क्षेत्रों और समुदायों पर, लघु स्तर और सामान्य लोगों और समूह पर जिन्हें मुख्यधारा के इतिहास-लेखन ने उपेक्षित रखा। इस अर्थ में, इतिहास-लेखन का यह क्षेत्र राष्ट्रीय, और वृहद् स्तर पर इतिहास-लेखन की आलोचना करता है। ये इतिहास धारायें जनसामान्य और उपेक्षित समुदायों के जीवन का चित्रण करती हैं। वे रुचि और स्रोत दोनों दृष्टियों से इतिहास व्यवहार में ऊर्जा संचारित करती हैं। इनके दो क्षेत्र – स्थानीय इतिहास और मौखिक इतिहास – पूर्व आधुनिक और आधुनिक तथा पूर्व साक्षर और साक्षर समाजों के बीच की रेखा पर स्थित हैं। इसके अतिरिक्त, वे संबंधित समुदायों द्वारा पोषित और समर्थित होती हैं, और वे, उसके बदले में, उन समुदायों को अपनी पहचान बनाने में और पुनर्संगठित करने में मदद करती हैं। तीसरा क्षेत्र जिसके बारे में यहाँ चर्चा हुई – सूक्ष्म इतिहास – कई मामलों में इन दोनों से अलग है। यद्यपि यह आम लोगों और स्थानीयता पर प्रकाश डालता है, लेकिन इसमें कुछ भी परंपरागत नहीं है। यह वृहद् स्तर के इतिहास से मोहभंग की परवर्ती आधुनिक प्रतिक्रिया है। 1970 और 1980 के दशक से शुरू होकर, सूक्ष्म इतिहास छोटे समूहों व्यक्तियों और इकाइयों पर प्रकाश डालता है। सूक्ष्म इतिहासकारों ने माना कि सिर्फ इस सूक्ष्म स्तर पर यथार्थ या वास्तविकता को समझना संभव है।

11.6 अभ्यास

1) स्थानीय इतिहास क्या है? नई और पुरानी शैली के स्थानीय इतिहास के बीच भेदों की चर्चा करें।

2) क्या आप सोचते हैं कि मौखिक इतिहास उपयुक्त इतिहास की श्रेणी में आता है? उदाहरण के साथ अपना उत्तर दें।

3) सूक्ष्म इतिहास, स्थानीय इतिहास और मौखिक इतिहास के बीच क्या समानता और असमानता है?

11.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

ऐक्सल हर्निट सीवर्स (संपा.), *ए प्लेस इन दि वर्ल्ड : न्यू लोकल हिस्टोरियाग्राफी फ्रॉम अफ्रीका एंड साउथ एशिया* (ब्रिल, लीदेन, 2002)।

जॉर्ज शीरन एंड यानीना शीरन, *'डिस्कोर्सेस इन लोकल हिस्ट्री', दि थिंकिंग हिस्ट्री,* 2:1 (1998)।

जॉन रेजिलोस्की, 'लोकल हिस्ट्री', इन केली बॉड (संपा.), *एनसाइक्लोपीडिया ऑफ हिस्टोरियन्स एंड हिस्टोरिकल राइटिंग,* 2 वोल्यूम्स (शिकागो, फिजराय डर्बन पब्लिशर्स, 1999)।

जेरमी ब्लैक एंड डोनाल्ड एम. मैकरील्ड, *स्टडिंग हिस्ट्री* (लंदन, मैकमिलन, 1997, 2000)।

पॉल थॉमसन, *द वॉयस ऑफ द पास्ट : ओरल हिस्ट्री* (ऑक्सफोर्ड, 1978)।

जॉन वन्सिना, ओरल ट्रेडिशन ऐज हिस्ट्री (लंदन, जेम्स करी, 1985)।

ग्विन प्रिंस, 'ओरल हिस्ट्री', इन केली बोड (संपा.), *एन साइक्लोपीडिया ऑफ हिस्टोरियन्स एंड हिस्टोरिकल राइटिंग,* 2 वोल्यूम्स. (शिकागो, फिजरॉय डर्बन पब्लिशर्स, 1999)।

एरिक हॉब्सबाम, 'ऑन हिस्ट्री फ्राम बिलो', एरिक हॉब्सबाम, *ऑन हिस्ट्री,* (लंदन, वीडेंनफेल्ड एंड निकोल्सन, 1997)

जिओवानी लेवी, 'ऑन माइक्रो हिस्ट्री', पीटर बर्क (संपा.), *न्यू पर्स्पेक्टिव ऑन हिस्टोरिकल राइटिंग* (पोलिटी प्रेस, कैम्ब्रिज; 1991, 2001)।,

कार्लो गिंजबर्ग, 'माइक्रो हिस्ट्री : टु ऑर थ्री थिंग्स दैट आई नो एबाउट इट', *क्रिटिकल इंक्वायरी,* 20 (ऑटम 1993)।

जॉर्ज जी. इगर्स, *हिस्टोरियोग्राफी इन दि ट्वेंटीथ सेंचुरी : फ्रॉम साइंटिफिक ऑब्जेक्टिविटी टु दि पोस्टमॉडर्न चैलेंज* (हैनोबर एंड लंदन, वेसलेन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1997)।

सिगर्दुर जिल्फी मैग्सन, 'दि सिंगुलराइजेशन ऑफ हिस्ट्री : सोसल हिस्ट्री एंड माइक्रो हिस्ट्री विदिन दि पोस्ट मॉडर्न स्टेट ऑफ नॉलेज', *जर्नल ऑफ सोसल हिस्ट्री,* स्प्रिंग 2003, वोल्यूम 36, इसू 3।

इस्टवान जिजार्टो, 'फोर आर्गुमिंट्स फॉर माइक्रो हिस्ट्री', *रीथिंकिंग हिस्ट्री,* 6 : 2 (2002)।

एम. ए. इतिहास

पाठ्यक्रमों की सूची

पाठ्यक्रम कोड	पाठ्यक्रम का शीर्षक	क्रेडिट
एम.एच.आई.-01	प्राचीन और मध्यकालीन समाज	8
एम.एच.आई.-02	आधुनिक विश्व	8
एम.एच.आई.-03	इतिहास-लेखन	8
एम.एच.आई.-04	भारत की राजनीतिक संरचनाएं	8
एम.एच.आई.-05	भारतीय अर्थव्यवस्था का इतिहास	8
एम.एच.आई.-06	भारत में सामाजिक संरचनाओं का विकास	8
एम.एच.आई.-07	भारत में धार्मिक चिंतन और आस्था	8
एम.एच.आई.-08	भारत में पारिस्थितिकी और पर्यावरण का इतिहास	8

एम.एच.आई.- 3 : इतिहास-लेखन

खंड-वार पाठ्यक्रम संरचना

खंड - 01	इतिहास का परिचय
खंड - 02	पूर्व-आधुनिक परंपराएँ-1
खंड - 03	पूर्व-आधुनिक परंपराएँ-2
खंड - 04	आधुनिक काल में इतिहास-लेखन की दृष्टियाँ-1
खंड - 05	आधुनिक काल में इतिहास-लेखन की दृष्टियाँ-2
खंड - 06	भारतीय इतिहास-लेखन की विभिन्न दृष्टियाँ और विषय-1
खंड - 07	भारतीय इतिहास-लेखन की विभिन्न दृष्टियाँ और विषय-2